रंग और रेखाएं

सम्पादन

से. रा. यात्री

आदर्श प्रकाशन मन्दिर, बीकानेर

आमुख

शिक्षा और साहित्य दोनों का प्रयोजन है—संस्कार देना, साथ लेकर
परिवेश से जोड़ना, व्यक्तित्व को उच्च धरातल प्रदान करना एवम् लोकि
दृष्टि पैदा करना। सर्जनहार (सृजक) की भूमिका हमारे यहाँ 'ब्रह्मा' के
मानी गई है। सृष्टि-रचना का जो कार्य अद्भुत कल्पनाशीलता एव रच
कौशल के साथ ब्रह्मा के हाथों सम्पन्न होता है, ठीक वैसा ही रचनाशीलता क
कवि और साहित्यकार के हाथों सम्पादित होना है। रचनाकार भी मनी
प्रतिपल नूतन उद्भावनाओं के द्वारा जीवन का पुनर्सृजन करता है और
मंगल की कल्याणकारी दृष्टि से अपनी रचनाओं को सार्वकालिक महत्व
करता है।

खुशी की बात है कि राज्य के शिक्षक शैक्षिक दृष्टि-सम्पन्न भी
साहित्यकार की चेतना से अनुप्राणित भी हैं। वे महज विद्यालयों के ही
नहीं, समाज के हर्ष-विषाद, रीति-रसम, आस्था-विश्वास, हर्ष-उल्लास को
करते तथा युगानुरूप जीवनी-दृष्टि प्रदान करने के नाते पूरे समाज के शि
दायित्व वहन करते हैं। इनकी रचनाओं में पूरा समाज अपना रूप-रंग
है, दर्शन और चिन्तन में अपनी जमीन की गंध तलाशता है, यथार्थ की
दीवारों को छूता है अथवा लोकोत्तर भावभूमि से स्वयं को संस्कारित क

शिक्षकों की रचनात्मकता को दिशा देने का हमारा यह प्रयास शिक्षा
की ओर से सन् 1967 से शुरू होकर आज तक अबाध जारी है। हर व
के कवि, कहानीकार, निबन्धकार शिक्षक अपनी ताजातरीन रचनाएँ
जिन्हें 'शिक्षक दिवस प्रकाशन योजना' के द्वारा प्रकाशित किया जाता
शिक्षकों को प्रकाशनों द्वारा विज्ञापित होने एवम् प्रकाश में आने का
मिलता है। पूरे देश में कदाचित राजस्थान ही ऐसा राज्य है जहाँ शि
साहित्यिक प्रतिभा को इस रूप में प्रकाशित किया जाता है। इस यो
सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि आज हिन्दी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में रा
के शिक्षक-साहित्यकार आदर के साथ स्थान पाते हैं। उनकी रचना
स्तरीय हैं तथा उनमे जीवन का स्पंदन है। वे साहित्य की अनेक वि
लिखते हैं और साहित्य मे कोई स्थान बनाने के लिए रचनात्मक
संलग्न हैं।

इस वर्ष भी प्रदेश के शिक्षक-साहित्कारों की छ पुस्तकें प्रकाशित हो
इनमे से कविता, कहानी, गद्य-विविधा, बाल साहित्य और राजस्थानी

इन्हें मिलाकर अब तक 'शिक्षक दिवस प्रकाशन योजना'
संकलन प्रकाशित हो चुके हैं। मैं चाहूंगा कि इस वर्ष संकलनों
साहित्यकारों के बीच स्थान-स्थान पर गोष्ठियों और सार्वजनिक
रचनाओं का सही आकलन होगा और शिक्षकों की उद्भावना
मुताबिक, भाषायी साहित्य, शिल्प की मूलता और उनके निहित
स्तरों पर एक तटस्थ दृष्टि मिल सकेगी।

इन संकलनों के लिए रचनाएँ भेजने वाले सभी रचनाकार-
बधाई देना चाहता हूँ कि उन्होंने स्वयं को सृजन के सार्थक श्रम
साहस दिखाया है, जो सत प्रतिशत शैक्षिक कर्म है। यह बात अन
से कुछ रचनाओं को स्थान नहीं मिल पाया। पर वे न हिम्मत हारें
मार्ग से विरत हों। धैर्य को पाथेय बनाकर अपने साहित्य-सृजन
जारी रखेंगे तो मुझे उम्मीद है, अगले वर्ष उनकी अनेक विधाओं
संकलनों में स्थान पा सकेंगी।

इन संकलनों के अतिथि सम्पादकों का मैं आभारी हूँ कि उ
अनुरोध को स्वीकार करके सीमित समयावधि में संकलन तैयार
सहयोग प्रदान किया। प्रकाशकों के योगदान के लिए भी मैं उन्हें ब
तथा भविष्य में भी ऐसे ही सहयोग की कामना करता हूँ।

दामोदर श
निदेशक,
प्राथमिक एवं माध्य
राजस्थान, बीक

शिक्षक दिवस, 1991

भूमिका

कुछ और समीप होती कहानियां

स्वातन्त्र्योत्तर भारत की स्थितियों-परिस्थितियों में जो उल्लेखनीय और बहुमुखी परिवर्तन हुए हैं उनसे हमारा जनजीवन सर्वाधिक आन्दोलित हुआ है। अनेक मान्यताएं और प्रतिमान टूटे हैं। अपने देश का एक नया रूप और चरित्र हमारे सामने उद्घाटित हुआ है। स्थूल यथार्थ और सूक्ष्म आन्तरिकता में युगान्तर उपस्थित होता लग रहा है। भारत का भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक व्यक्तित्व हमारा पूर्ण सम्बल और पाथेय है। उसकी भिन्नता में भी एकात्मपरकता सर्वोपरि है। हमारा लोक-मानस अत्यन्त संवेदनशील है और उसका सीधा प्रभाव हमारी लोक-कलाओं और साहित्य पर देखा जा सकता है। मनुष्य की शक्तियों की तरह ही साहित्य की सम्भावनाएं और व्याप्तियां अनन्त हैं। और सम्भवतः यही कारण है कि जन-मानस को अपनी समवेत-सांगोपांग छवि का प्रामाणिक साक्ष्य साहित्य में ही उपलब्ध होता है।

यों तो साहित्य में जो आखर और अर्थ है उसका प्रभाव अन्ततः विराट रूप लेकर युग-युगों तक फैलता ही है। जल में फेंका हुआ पत्थर लहरों में आन्दोलित होकर कगार को जिस प्रकार भीगा स्पर्श देता है उसी प्रकार शब्द चेतना में हिलोरें पैदा करता रहता है। साहित्य की किसी भी विधा का महत्त्व कम करके नहीं आंका जा सकता तथापि अन्य विधाओं की अपेक्षा कहानी का प्रभाव अधिक ग्राह्य और स्थिर है।

और जब हम कहानी की बात करते हैं तो सहज ही यह भी स्वीकार करते हैं कि कहानी हमारे जन-मानस में युग-युगों से गहरी बैठ रखती है। कहानी के स्वरूप और प्रकारों को लेकर जितनी बहस होती है शायद साहित्य की किसी अन्य विधा पर इतनी चर्चा नहीं होती। यह युगों से एक केन्द्रीय विधा बनी रही है क्योंकि कहानी का सम्बन्ध मात्र मानव जाति से ही नहीं

है बल्कि सृष्टि के सभी जड़-चेतन से कहानी का गहरा सरोकार है। जिस तरह यह जीवन और काल अनन्त है उसी प्रकार कहानी के आयाम भी कालान्तर तक फैले हुए हैं। प्रत्येक पल में न जाने कितना कुछ ऐसा घटित होता रहता है जो स्वतः कहानी का प्रतिपाद्य बन जाता है। वह आज का बयान होकर भी अतीत में न जाने कहां तक सुरक्षित पड़ा रहता है और उसका प्रसार भविष्यत् में भी कहां तक जायेगा इसकी कोई सीमा-रेखा तय नहीं की जा सकती।

कहानी के इस तात्त्विक चिन्तन के साथ ही मैं उस अनुभव की बात भी करना चाहता हूं जो मैंने गत दस-बारह दिनों में राजस्थान के शिक्षक-बंधुओं-बान्धवियों की कहानियां पढ़ते समय किया है। इन कहानियों से जो प्रश्न उभरते हैं उन पर बातें करना सार्थक लगता है। ये कहानियां हमारे समाज की जीवन्त धड़कन हैं। इन कहानियों में जबरदस्त चुनौतियों की संश्लिष्टता में गहराई तक जाकर उनसे यथार्थ और संवेदना के धरातल पर साक्षात्कार करने की जुझारू प्रवृत्ति दीख पड़ती है। मुझे लगता है पचास के दशक के बाद जो प्रवृत्तियां हमारे कथा-साहित्य में उभरी हैं। वे परवर्ती कथा-साहित्य के यथार्थ और कल्पना से एकदम भिन्न हैं। इन कथाओं में जिस यथार्थ का स्वरूप उजागर हुआ है वह जबरदस्त आक्रामक है। प्रेमचंद और उनके समकालीन कथाकारों की कलम से जो मूल्य स्थापित हुए वे आक्रामक न होकर आदर्शोन्मुख थे। मानवीय करुणा, चरित्र की श्रेष्ठता, नैतिक मान-मूल्यों की रक्षा और सामाजिक पारस्परिकता ही लेखन के आधार-बिन्दु थे। हिन्दी ही क्यों, सारी भारतीय भाषाओं के कथा साहित्य का यही प्रमुख स्वर था। सभी भाषाओं के लेखकों के सम्मुख बस एक ही प्रश्न प्रमुख था कि इस देश को पराधीनता से मुक्त कराना हमारी लेखनी का अभीष्ट है। उन भारतीय लेखकों की लेखनी अपनी ओजस्विता में करोड़ो भारतवासियों को बलि पंथी बनाने की सामर्थ्य रखती थी। यद्यपि उस काल की कहानियों में बहुआयामी चरितार्थता कम थी, मनोविज्ञान का संश्लेषण-विश्लेषण भी उतना गहरा नहीं था, चारित्रिक वैविध्य भी सीमित ही था परन्तु अपने प्रभाव में वे कहानियां बेजोड़ थीं। हम उस काल की कहानियों और कथाकारों को आज भी याद करते हैं और उन्हें शिलालेख की तरह स्थायी स्वीकार करते हैं। किन्तु हम भूल जाते हैं कि आजादी के बाद एक दशक बीतते न बीतते वह सारा आदर्शोन्मुख स्वर्णयुग स्वर्णमृग की भांति न जाने कहां बिला गया!

गत चालीस वर्षों का सारा कथा-साहित्य चाहे वह किसी भी भारतीय भाषा का क्यों न हो, मोहभंग, मूल्यहीनता, कुण्ठा और दिशाहीनता का दस्तावेज है। भ्रष्टाचार, हिंसा और आपाधापी जिस गति से सुरसामुखी

होकर हमारे समाज में व्याप्त होती चली जा रही है, साहित्य में भी उसी स्वरा से उसका अंकन मुखर हो उठा है। पुराने लेखक के सामने स्थूल चुनौतियां अधिक थी—शत्रु सामने था किन्तु आज शत्रु नितान्त अमूर्त और घातक है। दिनों-दिन भ्रष्ट होती राजनीति और समाज, दुर्गति को पहुंचती अर्थव्यवस्था, साम्प्रदायिक तनाव और दुर्भाग्य तथा देश को खंड-खंड विखंडित करने वाली देशी-विदेशी शक्तियां और साजिशें लेखक के लिए जानलेवा चुनौतियां बनकर सामने खड़ी हैं। उसका फलक बहुत व्यापक हो उठा है। इस देश के निवासियों को भाषाओं को लेकर जो महाभारत आये दिन लड़ने पड़ते हैं उनकी व्यर्थता आज किसी से छिपी नहीं है पर साथ ही वह हमारी रचनात्मकता की जड़ें हिलाकर रख देती हैं। आतंकवाद और मारक घृणा के नित नये स्वरूप ही निर्मित नहीं हो रहे हैं बल्कि विदेशों से आयातित होने वाले सांस्कृतिक प्रदूषण भी हमारी संस्कृति और साहित्य को लीलने के लिए बेचैन है।

विषाद का यह व्यापक संसार आज के लेखक के सामने अन्तहीन होकर फैला पड़ा है। एक तरफ उस विरासत का क्षोभ है जो नई पीढ़ी को घर-बाहर से मिल रही है तो दूसरी ओर अपने अस्तित्व को बचाने का संकट सामने है। पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के सोच का अन्तर कहीं पाट सकने की गुंजाइश ही नजर नहीं आती। दुनिया जितनी ही निकट आती दीखती है उतनी ही संकुल और छोटी होती जा रही है। आज के लेखक के सरोकार बहुत बड़े हुए हैं। कहना न होगा कि इस संग्रह में जाने वाली कहानियों का रचनात्मक स्वरूप भी इन सभी प्रश्नों से जुड़ा हुआ है। जहां ये कहानियां राष्ट्रव्यापी आत्मघाती दुष्प्रवृत्तियों का स्वरूप उभारती है वहीं उन गहरी साजिशों को भी अनावृत करती है जो हमारे जन-जीवन को घुन की तरह लीलती जा रही है।

इन कहानियों में लेखकों ने अपनी जमीन की पहचान के साथ-साथ विषयों की विविधता को बनाये रखा है। उनके अपने अनुभवों और संवेदनाओं में गहराई और व्यापकता है। अनेक कहानियों में भरपूर ताजगी और नवीनता के भी दर्शन होते हैं। इन कहानियों को पढ़कर यह तो नहीं कहा जा सकता कि सभी सफल और सिद्धहस्त रचनाकार हैं और न इस प्रकार की अपेक्षा ही की जानी चाहिए—हां, यह निर्विवाद है कि इन शिक्षक लेखकों ने अपने अनुभव जगत को सादगी और सहजता से लेखनी पर उतारा है। यह भी सत्य है कि थोड़े-से लेखकों के पास ही मानक और समर्थ भाषा की पूंजी है किन्तु वह जिस भूमि से जुड़े हुए हैं उसका रंग-रूप और गंध उनका प्रामाणिक तौर पर जाना-पहचाना है। कई कहानियों की मार्मिकता

और मूल्यवत्ता असंदिग्ध है। कुछ कहानियां निश्चय ही बहुत सधी कलम का साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं और उनकी संवेदना और सम्प्रेषणीयता में अच्छा संतुलन है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि साधारण शब्द और भाषा के बावजूद कहानियों में पठनीयता का उत्कृष्ट गुण है। इन कहानियों को कहानीकारो के भाव-जगत की प्रतीति के रूप मे ही ग्रहण किया जाना चाहिए—साहित्य के ऊंचे मानदण्डों पर कसकर देखना समीचीन नहीं होगा।

अन्त मे उन सभी शिक्षक लेखकों को उनकी कहानियों के प्रकाशन पर हार्दिक बधाई देता हूं। मैं आश्वस्त हूं कि वे निरन्तर अच्छी-से-अच्छी रचनाए साहित्य-जगत को देंगे और उनकी अभिव्यक्ति निरन्तर बलवती और सार्थक होती जायेगी। पुनः अपनी आत्मिक शुभ-कामनाएं व्यक्त करके मैं कहानीकारों और पाठकों के बीच से हटता हूं।

एफ-1 ई-7 नया कवि नगर,
गाजियाबाद

(से. रा. यात्री)

अनुक्रम

□

बूढ़ी आंखों के सपने

माधव नागदा

बूढ़े के सिर पर हरी घास का गट्ठर था। यह घास वह विशेष रूप से अपने दोनों बैलों के लिये लाया करता था। यानी इस मुलायम दूब पर अन्य किसी ढोर का अधिकार नहीं था। उसके हाथ में मजबूत रस्सी थी, जिसके दोनों सिरों पर बैल बंधे थे। बीच में वह स्वयं। कभी-कभी वह प्यार से दोनों बैलों को लव और कुश कहा करता था।

पोल में प्रविष्ट होते ही उसे अंगनाई में विशेष हलचल का आभास हुआ। परन्तु इस तरफ ध्यान न देकर उसने सिर को आगे की ओर हल्का सा झुकाया। भारा धप से जमीन पर आ गिरा। बैलों को अपने अपने ठाण पर बांधा। उनकी पीठ थपथपाई। फिर गट्ठर खोलकर थोड़ी थोड़ी घास डाली और आंगन की तरफ बढ़ा।

वहां बहुत से बच्चे किलकारियां भर रहे थे, और नाच रहे थे। उनकी खुशी देखने लायक थी। वे तालियां पीट-पीट कर गा रहे थे—

टी० वी०'''आ गया, टी० वी०'''आ गया।

माभारत'''आ गया, माभारत'''आ गया।

बच्चों के लिये टी० वी० और महाभारत एक दूसरे के पर्यायवाची थे। रामायण की लोकप्रियता के दौर में उनके टी० वी० का मतलब रामायण होता था। और रामायण का अर्थ टी० वी०। मजे की बात यह थी कि इनमें से अधिकांश ने न रामायण देखी थी न महाभारत। इन्होंने शहर से देखकर आये अपने बड़े भाइयों में या फिर उनके साथ गये इक्का दुक्का हमजोलियों से मनमोहक कहानियां सुनी, फिर घास के धनुष बाण बनाये और एक दूसरे पर तान लिए। मोहन का तीर कालू की आंख में जा लगी। दोनों परिवारों में महाभारत मच गया। वे अभी भी एक दूसरे पर आंख तरेरते हैं। इधर मोहन और कालू, भीम और

आदत के मुताबिक खंखारा और बोला, "क्या बात है, आज इतनी घुघरमाल क्य इकट्ठी हुई हैं ?"

अब कहीं बच्चों का ध्यान बूढ़े की ओर गया। उन्होंने बूढ़े को घेर लिया रामाबा आ गये—राम्बा आ गये। बूढ़े का नाम रामलाल पटेल था। बच्चे रामाबा कहते थे। यही रामाबा बच्चों की सुविधा के लिए राम्बा बन गया।

बच्चे राम्बा को घेर कर नाच रहे थे, और गा रहे थे, राम्बा—आ गये माभारत—आ गया, टी० वी०—आ गया।

अब रामलाल पटेल उर्फ राम्बा को स्थिति की वास्तविकता का पता चला। अच्छा, तो यह बात है। बला गांव में सबसे पहले उसी के घर मे आ घुसी है। तीन-चार दिन पहले राम्बा ने मोती सेठ की छत पर छतरी तनती देखी थी। तभी से उसे पक्का विश्वास हो गया था कि भरिष्टवाड़े की पेटी जल्दी ही इस गाव मे भी आने वाली है। परन्तु सबसे पहले उसी के घर में ! हद हो गई। जबकि उसने मदन को कह दिया था। अगर टी० वी०, फी० वी० लाया तो इस घर में या तो तू रहेगा या मैं।

उस वक्त मदन ने कोई ध्यान नही दिया था। हर नये परिवर्तन के एवज मे इन खूसटों का यही रवैया होता है। जब वह मोटर साइकिल लाया तो बापू ने परम्परानुसार अपना विरोध यों प्रकट किया, 'जब मैं तेरे जैसा था तो यहां से उदयपुर पैदल जाता था। रात को झाबका पड़ेत (शाम होते) निकलता और सवेरे भाग फटते (सूर्योदय होते) पहुंच जाता। दिन मे पेशी वगैरा निबटा कर वापस तीजे पहर रवाना होता और सोये मनखे यहां।'

उसके बापू हर बात यो ही आरम्भ करते, जब मैं तेरे जैसा था तो—आगे कोई न कोई ऐसी बात होती जो मदन की दुखती रग छू जाती। जो उसे आलसी, फैशनपरस्त, ऐयास या गैर जिम्मेवार ठहराने वाली होती। जब मैं तेरे जैसा था तो तिरकाल दोपहर मे खेत के काटे चुनता। ऊपर जेठ महिने का तावड़ा। नीचे अगारे सी तपती धरती। हाथों में भारी भरकम पत्थर। खेती करना हंसी खेल नही है भाया, कि घूटी तानकर सो गये और कोठियां भर गयी। या फिर जब मैं तेरे जैसा था तो कांदा रोटी खाकर काम चलाता, तेल घी तो उस समय दो आंखो नहीं देखा। साग भाजी भी कौन कहे ? जवान घटोरी होनी तो आज तुम्हारे और मेरे मुंह मे माखे (मक्खियां) ओराते (प्रवेश करती) सड़क पर मजूरी करनी पड़ती मजूरों।

बाद मे बापू ने मोटर साईकिल को एक जरूरत के रूप में स्वीकार लिया था। मदन दो तीन बार उन्हें कांकरोली ले गया। घर गृहस्थी की चीजें लाने या पेशी·

हा। इसलिये तो इसे फटफटिया कहते हैं।" मदन मुस्करा कर बोला।

मदन ने सोचा एक दिन टी० वी० की जरूरत को बापू इसी तरह कबूल कर लेंगे। वह उन्हें प्रभावित करने एक, दो, काम करने के बहाने शहर माभारत भी दिखा लाया। डोकरे की प्रतिक्रिया थी, कुछ नही धरा रे मदन। दुनिया को भोंदू बनाने की कला है। देख वो भी सरीखे, नहीं देखे वो भी सरीखे। खुद मेहनत करेंगे तो खाने को मिलेगा। टी० वी० से पेट भरने वाला नहीं है। मदन मन ही मन कुढ़ कर रह गया था। इन गावडेल बूढ़ों मे दिमाग नाम की कोई चीज ही नही होती, बस ले देकर एक पेट। अरे पेट तो कुत्ता भी भर लेता है। दुनिया मे आए हो तो कुछ आनन्द भी लेना सीखो। पर उस वक्त मदन कुछ नही बोला। अपने दो तीन नौकरीपेशा साथियों से मिलकर योजना बनायी और मोती सेठ के लड़के को तैयार किया। डिस्क लग गई। सबसे पहले टी० वी० आ गया मदन के घर।

टी वी की खबर आग की भांति उस छोटे से गाव मे फैल गयी। बच्चे और किशोर अब भी दौड़े चले आ रहे थे। रामाबा के भीतर गर्म हवाएं बहने लगी। कही ये लू न बन जायें। वह नीचे बैठ गया और किसी की लापरवाही से इधर-उधर बिखर पड़े गेहूं के दाने बीनने लगा। शायद भिखारी को देते समय बहू के हाथ से छिटक पड़े थे।

"अन्न भगवान है। ठोकरो मे आते हैं। आदर से उठाकर ठिकाने रख देना चाहिये। मगर फुरसत किसे। कमावे जिसे पता चले कि बाई के बोर किस भाव है।" रामाबा ने मानो अपने आप से कहा। गेहूं का एक-एक दाना उसे अपने जिस्म से बहे पसीने की एक एक बूद के समान लगता है।

रामाबा के जीवन मे दो चीजें परम आदरणीय थी। एक तो अन्न, जो उसके खरे पसीने की कमाई था। अन्न, जिसे प्राप्त करने के लिए उसे और उसकी मा को बहुत जिल्लत उठानी पड़ी थी। पिता बहुत पहले साथ छोड़ चुके थे। बचपन से जवानी तक वह लड़ता रहा और अपने चाचाओं की मार सहता रहा। परन्तु हताश नही हुआ। मा का आशीर्वाद साथ था। बेचारी के गहने तक बिक गये। बच्चे से कन्धा भिड़ाकर मजदूरी की। यहा तक कि कर्ज बोझ से गृहस्थी की गाड़ी चरर चू करने लगी। मगर रामलाल का दूसरा नाम जद्द था। चाचाओं से अपना हक छीनने की जिद। कर्ज तो यही धरती माता उतारेगी। अन्ततः उसने अनवरत साधना के बल पर अन्न भगवान को प्रसन्न कर ही लिया। अब वह भोजन से पूर्व थाली के चारों ओर जलांजलि छोड़ता है और हाथ जोड़कर श्रद्धापूर्वक कहता है "लीजे अन्न भगवान भोग" कभी-कभी वह पत्नी की तरफ देखते हुए आगे जोड़ देता है, "भूखों मरे भूखायो वाले भोग" पत्नी मुस्करा देती है। और यह बात वह अपनी पत्नी के रूखे होठों पर मुस्कान की लकीर देखने के लिए ही तो

वह मदन को कहता, "अरे बेटा, मैं तो नहीं पढ़ पाया। पर तू जितना चाहे उतना पढ़। वकालत पास कर। फिर गरीब जन और दलितों को उनका हक दिला।"

मदन भी पढ़ता रहा। परन्तु एक दिन बोला, "नहीं बापू, मैं वकील नहीं वैज्ञानिक बनूंगा।" वैज्ञानिक का अर्थ रामावा को नहीं मालूम था। उसने गीली निगाहों से मदन की तरफ देखा। बेटे का कद उसके कद के बराबर हो चुका था। वे धीरे से बोले थे, "ठीक है बेटा तेरी इच्छा हो जो बनना, मगर तेरे बाप ने जो जिन्दगानी जी है, उसे भी याद रखना।"

मदन वैज्ञानिक तो नहीं, निरुट की फैक्ट्री में कैमिस्ट बन गया। और उसकी याददाश्त भी उतनी अच्छी नहीं रही।

बच्चों का समूहगान जारी था,

महाभारत—आ गया,

टी० वी०—आ गया।

"छोरो भाग जाओ।" रामावा अपना गुस्सा जब्त नहीं रख पाया। उसके भीतर का महाभारत बाहर आ गया। "यहाँ मेला मंडा हुआ है, या नंगा नाच हो रहा है, जो सब चले आये।"

हमेशा तो राम्बा चार बच्चों को दोनों बाहुओं पर टांक कर चकरी घिन्नी खिलाता था। मगर आज बच्चों को आश्चर्य हुआ।

दरअसल राम्बा का गुस्सा बच्चों पर नहीं था। वह मदन को अपनी नाराजगी का अहसास कराना चाहता था।

"टी० वी० आ गया है, तो नंगा नाच भी हो जायेगा, रामा काका।" राम्बा

ने चौंक कर दरवाजे की तरफ देखा। रतन था। रतन की इस बात ने जले पर नमक का काम किया।

"मदनिया, सुनता नहीं है।" रामा काका चिल्लाया। इस बार आवाज इतनी भारी और तेज थी कि बच्चे सहम गये। वे अपना नाचगान भूल कर एक तरफ दीवार के पास खड़े हो गये।

मदन ने सुनकर भी नहीं सुना। वह और उसका दोस्त कनेक्शन का तार खींचते रहे चुपचाप।

"मदन, बहरा है क्या?" डोकरा जितनी ऊंची आवाज कर सकता था, कर चुका। मदन ने सिर्फ एक बार अपने बाप की तरफ देखा और काम में जुट गया। आज शुक्रवार था। मदन के दिमाग में चित्रहार और रामायण घूम रहे थे। किसी कारण से चित्रहार भी आज आठ पांच की बजाय सात पाच पर आने वाला था। मदन के मन में अजब सी पुलक थी और आंखों में चमक कि बड़े बूढ़े युवक युवतियों से आंगन अटा पड़ा है। लोग आनन्दित हो रहे हैं और उसकी तारीफ किये जा रहे हैं। भाई वाह मदन क्या चीज लाया है? नैनों की तरस मिट गयी। दूसरी तरफ संच आवर्स में साथियों के सामने अब नहीं झाकनी पड़ेगी। अब वह विज्ञापनों से लेकर मिले सुर में सुर हमारा, और देर रात की फिल्मों तक हर चर्चा में अधिकार पूर्वक भाग ले सकेगा। इतने दिन तो वह बहस के लिये राष्ट्रीय मुद्दे उठाता था, लेकिन उसके साथी बार बार धकियाते हुए ले जाते टी०वी० सीरियलों की ओर। टी० वी० ही नहीं तो सीरियलों के बारे में मदन क्या बोले? परन्तु अब—नो प्राब्लम। उसे ध्यान ही नहीं था कि उसके बूटों तले अन्न के दानों का कचूमर निकल रहा है।

रामाबा तिलमिला उठा। उसके चेहरे की झुर्रियां कस गयी। उसने कन-खियों से रतन की तरफ देखा। वह मुस्करा रहा था। अब रामाबा के लिये बर्दाश्त के बाहर हो गया। वह झपटता हुआ गया और नसैनी पकड़कर हिलाने लगा, 'उतर नीचे। मैं कहता हूं, इसी घड़ी उतर जा।"

"अरे—अरे बापू। यह क्या करते हो? गिर जाऊगा न।"

बच्चों का उत्साह पुनः लौट आया। वे खिलखिलाने लगे। परन्तु उनकी खुशी पानी के बुलबुले की तरह फट गयी। मदन ने उन्हें बुरी तरह डांट दिया। वह एन्टीना तार की काईल अपने दोस्त की तरफ फेंक कर नीचे उतरा। वैसे उसका काम पूर्ण हो गया था। अब तो केवल सेट में तार जोड़कर ऑन भर करना था। मदन ने अपने दोस्त को इशारा दिया। अर्थात् बूढ़ा कुछ भी कहता रहे, तुम कर दो श्रीगणेश।

"मैंने तो पाई पाई इकट्ठी कर तुझे पढ़ाया-लिखाया, कभी बीड़ी तक का नशा नहीं किया। सिनेमा भी किसी ने दिखाया तो देखा। दिन-रात एक कर दिये

मेनों के कब्जे के लिये। खून-पसीना बहाकर मुझे होशियार किया। कर्ज भी लेना पड़ा तो परवाह नहीं की। माथे तो दीवाला और बाबू मात्र फैशन में पैसे उड़ा रहे हैं। मैं तेरे जैसा था तो—।

रामाबा को फिर भूत ने आ घेरा। उसे ख्याल ही नहीं रहा कि कब निर्जीव पड़ा छोटा सा डिब्बा जी उठा। तस्वीरें चलने लगीं। एक तो बाहर छोटे परदे पर। जिन्हें लड़के लड़कियों की भीड़ बड़े चाव से देख रही थी। दूसरी रामाबा के अन्तर्मन में, जिन्हें रामाबा के सिवाय कोई नहीं देख सकता था। भीतर के पर्दे पर जिंदगी की रील थी। बाहरी पर्दे पर थे, खुशबूदार साबुन, फ्रीज, शिकाबाई, दिनेश और ऐसे ही कई अजनबी नाम। रामबा के अन्तस में जानी-पहचानी तस्वीर थी। बचपने में ही पिता का साया उठ जाना, पढ़ने की अदम्य लालसा का घुट-घुट कर धुआं हो जाना। चाचाओं-बाबाओं द्वारा जमीन को हड़प लेना। कड़कड़ाती धूप, नंगा बदन, कुदाल, तगारी, धुत्कार, वकील, कोर्ट कचहरी, मिर्च, रोटी, भूख, वकीलों की फीस, बाबुओं को रिश्वत, मीलों पैदल सफर, अनउगाड़ कर्ज।

रामाबा की पीठ पर मानो तपते ढेले की मार पड़ने लगी। समय के सागर में और गोते लगाना नामुमकिन हो गया। अन्दर का टी० वी० बन्द कर वे बाहर आये। पूरा आंगन खचाखच भरा था। कुछ औरतें और किशोरियां आकर जम गयी थी। टी० वी० के सामने अगरबत्ती का धुआं उड़ रहा था, और मदन हाथ जोड़े खड़ा था। मदन की पत्नी कसीदे वाली झकाझक साड़ी ओढ़े धनिया बांट रही जब वह अपने ससुर के पास आयी तो उन्होंने झटके से मुंह दूसरी ओर फेर लिया। इधर उनकी सोलह वर्षीया बेटी रामूडी सिर पर लकड़ी का गट्ठर लिये घर में प्रवेश कर रही थी। उसके चेहरे पर पसीने की नन्हीं नन्ही बूंदें यों चमक रही थी जैसे बेशकीमती मोती। पीछे रामूडी का भाई भमरू था। भमरू पास के कस्बे में एक पुरानी साइकिल लेकर पढ़ाई करने जाता था। उसकी अक्सर शिकायत रहती थी कि साइकिल के ट्यूब टायर अत्तू हो गये हैं कि फ्राईव्हील के दांते घिस जाने से चैन बार बार उतर जाती है कि पैंट अब पहनने लायक नहीं रही है। रामाबा का रबी पर जवाब होता कि खरीफ की फसल पकने पर लेंगे और खरीफ पर जवाब होता कि रबी की फसल पकने पर भमरू शिकायतें दोहराते दोहराते नवी से ग्यारहवीं में आ गया परन्तु फसल कोई भी ढंग से पकी नहीं। और मदन सब कुछ जानते समझते भी अनजान। तटस्थ।

"बापू मुहूर्त के वक्त प्रसाद लेने से इन्कार मत करो।" मदन कह रहा था। टी० वी० कोई बुरी चीज नहीं है। बड़े बड़े लोग देखते हैं। जमाने की मांग है। सारी दुनिया को एक जगह इकट्ठा करने की कारीगरी। इससे ज्ञान बढ़ता है। शिक्षा मिलती है। समाज में जागृति आती है। आज रामायण देखेंगे। परसों

महाभारत। इन्हें देख लोग धरम करम पर चलेंगे। अपने गाव के लड़के माता-पिता और बड़ों की आज्ञा मानना सीखेंगे।"

रामाबा ने कुछ पल मदन को घूरा। फिर मानो आग्नेयास्त्र चलाया, "तू जानता है आज्ञा? मैं कहता हूं, मत लगा टी० वी०।" मदन अपने बापू की इस बात से खौफ खाता है। डोकरा अनपढ़ है, मगर मौका आने पर वो दुर्वी दिखाता है कि अच्छे अच्छे चारों खाने चित्त हो जाते हैं। फिर भी मदन ने तय कर लिया कि वह आज किसी भी कीमत पर दबेगा नहीं।

"बापू आप समझते क्यों नहीं, इसमें कुछ भी खराबी नहीं है।" मदन एक फिर प्रयास किया। रामाबा उसी अंदाज में बोले—

"सब समझता हू भाया। तेरे से पहले जन्मा हूं। मैंने जितना नमक खाया उतना तूने आटा नहीं खाया होगा। कोई खराबी नहीं है, तो देख ले अपनी आखो से।"

इसी समय चित्रहार आरम्भ हो गया। पर्दे पर एक अर्धनग्न युवती हीरो से बार बार यूं लिपट जाती जैसे मक्की के तने से तरोई की बेल। हीरो भी इस मामले में कम नहीं था। दर्शक औरतें घूंघटे में हंसती हुई एक दूसरे के चिकोटिया काटने लगी। किशोरियो ने लाज के मारे हथेलियों से आखें ढाप ली। लड़के कह रहे थे, "यह श्रीदेवी है, नहीं, नहीं यह तो रेखा है। हू हू। जानता तो है नहीं फरहा है, फरहा। देख कितनी मस्त है।" और वे इस फूहड़ गाने के साथ गुनगुनाने लगे। देखने वालों में रामाबा की कुवारी बेटी भी थी और दोनों बेटों की बहुए भी। रामलाल पटेल की समझ में नहीं आ रहा था कि ये कैसी जागृति है।

"बंद कर ये नगा नाच।" रामाबा गुस्से से थरथराने लगा। उसकी आवाज इतनी ऊंची थी कि गाने की बेसुरी धुन दब सी गई।

"अब ऐसा नंगापन सिखायेगा तू गाव के छोरे छोरियो को? अभी तो क्या कहा तूने, यही जागरती लानी रह गयी है? तेरी बहन बड़ी हो रही है और भी बहनें कुवारिया हैं गांव में। उनके कच्चे मन पर क्या असर पड़ेगा, सोचा तूने? जागरती लायेगा इस डोबरे से हूह।" रामाबा दनदनाता हुआ गया और स्वीच आँफ कर दिया।

सिर मुडाते ही ओले पडे। एक गलत कार्यक्रम मुहूर्त के लिये चुन लिया। मदन ने पसोपेश में अपने दोस्त जग्गू की तरफ देखा। इधर जग्गू ने भी एक फूहड़ बात कर दी।

"क्या फर्क पड़ता है, रामा काका। आगे-पीछे ये सब सीखना तो है ही। कल नहीं सीखा और आज सीख लिया।"

रामा काका के तो जैसे आग में घी पड़ गया। उसने दाये पैर में से पौन हाथ का सोलबन्द जूता खोलकर हाथ में लिया और ताक कर जग्गू की ओर

फैशन। बापू पहले ही नाराज था। वह मन्दिर से भागता नजर आता। घर आकर तेरी बहन को लिखा ये आजकल की बातें। मेरे घर में कभी नजर आता तो घाघरा फोड़ दूंगा। कहीं तो नहीं दिखता। मां की बीमारी की चिन्ता नहीं। बहन के विवाह का नाम नहीं। भाई की गाड़ी किस हालत हो गयी, गाये रह गये भी तो बापूजी को नहीं दिखता, बस ले देकर टी० वी०, टी० वी०, ऐसा गुस्सा आ रहा है कि इसे भी उठाकर ऊंचे से कुए में डाल दूं।" बच्चों को इस कार्यक्रम में त्यौहार से भी ज्यादा आनन्द आता। सब एक साथ बोले, "रामा बी—जै।'

"ठहरो तो परभूनी। मैं बोनाऊं तुम्हें। धरती में से तो उगे नहीं और टी० वी० देखने चले।" रामलाल बच्चों की तरफ लपका। बच्चे तो दो ग्यारह। औरतें भी सकुचाती-सिमटती झुण्ड की झुण्ड उठ गयी हुईं। रामा काका ने हाथ जोड़े, आओ बाई जाओ। पर्दे की बात पर्दे में ही अच्छी लगती है। पर्दे के बाहर आयी कि मरजाद टूटी।"

इधर मदन की पत्नी बड़बड़ा रही थी, "इस घर मे रहना ही दुश्वार हो गया है। सारी दुनिया टी० वी० देखती है, और ये सादड़ी के साहूकार बन रहे हैं। चलो जी कहीं दूसरा घर ढूंढ़ते हैं। किराया ही लगेगा। रोज-रोज की किच किच से तो छुटकारा मिलेगा।"

रामलाल के कान खड़े हो गये, मदन का जवाब सुनने के लिये। कौन बड़ा है? मां बाप, या बीवी और टी० वी०। रिश्ते-नाते इन दोनों में ही कैद होकर रह गये हैं, या थोड़ा बहुत बचा भी है? रामाबा के प्राण कानों के गोखड़े में आकर बैठ गए। मदन का प्रत्युत्तर ही उनके अस्तित्व की कसौटी था। जिसे गोद में खिलाया, दुःख कष्ट झेल फसल की तरह पाला पोसा। जिसे लेकर तरह तरह के सपने संजोये, क्या वह एक ही झटके मे सब कुछ छोड़कर चला जायेगा?

रामा काका मदन से नजरें चुराये खड़े थे। क्या पता उनकी आंखों में वह कुछ देखने को मिले जो उनकी उम्र भर की कमायी पर पानी फेर दे। इस वक्त तो बस कान ही आंखें बन हुए थे।

मदन मौन था। अर्थात् आधा स्वीकार। घर छोड़ जाने की उसकी मंशा है तो।

"तुम क्यों जाते हो भाई, मैं ही चला जाता हूं। बूढ़ा तुम्हें नहीं सुहाता है, तो न सही। खेतों पर पड़ा रहूंगा। झोंपड़ी बना लूंगा। वानप्रस्थी।" रामलाल पटेल ने कह तो दिया, परन्तु उसके गले में जाने कुछ अटक रहा था।

मदन ने भी अब जाकर हिम्मतपूर्वक अपने पिता का चेहरा देखा। वहां अचानक अकाल की छाया मंडराने लगी थी। आज उसे एक नया अनुभव हुआ। कि वह सब कुछ बर्दाश्त कर सकता है। तीर से चुभते ताने, दनदनाती गालियां

हां तक कि पिता के जूतों की मार भी। परन्तु पिता के चेहरे का पतझड़ वह ही देख सकता। यह कातरता, आवाज का यह ढहापन मदन के लिये बिलकुल यी चीज थी, नयी और असहनीय। कितना ही गर्म-मिजाज क्यों न हो, उसका प जीवट वाला था। यह जीवट मदन ने बहुत कम लोगों में देखा था। उसी स्तंभ झुझारूपन का यों झर जाना? मदन के अन्दर काटे सा कुछ कसकने गा।

रामलाल पटेल के कदम धीमे धीमे बाहर की ओर बढ़ रहे थे। रामूड़ी चिल्लायी, "बापू मत जाओ।"

छोटे भाई ने अपनी ठाठिया साइकिल एक ओर पटक दी। मा के सीने से खांसी का बवण्डर उठा और मुह से लाल लाल बगूले गिरने लगे। ऐसी खासी मदन ने पहले नहीं देखी।

"छोटू फौरन जा वैद्यराज जी को बुला ला। रामूड़ी, तू मा की पीठ पर हाथ फिरा।" मदन ने कहा और दौड़कर रामाबा का रास्ता रोक खड़ा हो गया।

अब दोनो बाप-बेटे दो युगोकी तरह आमने सामने खड़े थे। []

किसनू

राजकुमार तिवारी

वह गरीब बच्चा ! उम्र कोई ग्यारह साल, गोरा चिट्टा चेहरा, होंठ इतने लाल जो हरदम धुले हुए से लगते हैं। सीधी नजर संभालकर चलना रोहिणी को इतना प्यारा लगता था कि वह उसे नौकर नहीं पुत्र की भांति लगता था। वैसे नौकरों और फिर छोकरों की तो समस्या विकट ही रहती है। आज छोकरे को रखो, पांच सात रोज में कुछ ले भागेगा, तो कोई खाने की हर वस्तु पर जानलेवा नजर रखता है, तो कोई कोई अत्यन्त बातूनी हो जाता है। किसनू रोहिणी को बिना प्रयास ही मिल गया था। वकील साहब गांव के इस भोले-भाले बालक को लाये तो संदेह की दृष्टि से ही थे, क्योंकि न तो कोई वारिस साथ में था, न बालक के तन पर कपड़ा, न बालों में तेल, न पैर में जूते, तो क्योंकर विश्वास कर लिया जाय कि बालक भला साबित होगा।

रोहिणी ने तपाक से पूछा, "क्यों रे तेरे माता पिता हैं क्या ?" बालक ने सहमते हुए कहा—"हैं तो सही लेकिन मुझे अच्छे नहीं लगते।" रोहिणी को यह जवाब बड़ा अप्रत्याशित लगा। गैस पर दूध चढ़ा था। वह उतावली से रसोई घर में घुसी और ठीक-ठाक करने लगी। किसनू यहां आकर बच्चों में हिल-मिल गया था, उसका चेहरा हाव-भाव, बोल-चाल, वकील साहब के किसी भी पुत्र रत्न से कम नहीं लगते थे। दरअसल वह रोहिणी के सामने खुल कर जी रहा था।

वह घर का सारा छोटा-बड़ा कार्य करता था। वकील साहब के छोटे मुन्ने का रोना सुन उसने आवाज लगाई "बीबीजी बीरू चिल्ला रहा है।" रोहिणी हांफती हुई भागी—"क्या हो गया है रे।" "मम्मी इसने पापा की ब्लेड से अंगुली काट ली है" पांच वर्षीय विमल ने तुतलाते हुए कहा। काटेगा ही, एक दो की अंगुलियां कटेंगी जब मानेंगे। तेरे पप्पा से हजार बार कह दिया कि सेविंग का डिब्बा बाहर मत छोड़ा करो फिकवा दूंगी किसनू से बाहर ! वह बीरू को चुप कर रही थी

बिस्कुट दिए, खिलौने दिए, डिटोल की पट्टी बाधी, गोद में उठाया और सहलाने लगी।

किसनू सुबह के बर्तन माज कर बेसिन पर हाथ धो रहा था। आगे से टूटा हुआ अपना चिपटा अंगूठा देखकर उसकी आखों के किनारे गीले हो गए। उसे याद आया वह सारा दृश्य जब वह एक दिन भैंस का खूटा साफ कर रहा था। उसका अगूठा भैंस बाधने के पत्थर के नीचे दब गया था। दर्द के मारे वह चिल्लाया। आवाज सुन मौसी दौड़ी हुई बाहर आई। हरामजादे खा जाएगा मुझे, और धड़ाधड़ दो चार झापड़ लगा दिए। निगोड़ा कही का, मर क्यो नहीं गया उसी के साथ। मेरी छाती पर मूग दलने छोड़ गई। न खाने का होश, न पीने का होश, न खेलने का होश। कहां-कहां सभाल रखू। हर रोज एक न एक मुसीबत खड़ी कर देता है। कभी हड्डी पसली तोड़ दूगी तो हो जाएगा बेकाम।

मास्टर हरगोविन्द ने बाहर से आते ही पूछा, "क्या बात है किसनू रो क्यो रहा है?" "पूछो अपने लाड़ले से मेरे तो नाको दम कर दिया है। इसके आगे तो मर जाऊ तो अच्छा है। पीटती हू तो दुनिया कहती है विमाता है इसलिए मैं तो हाथ नही लगाती। मेरी बला से काट ले चारो अगूठे—मौसी ने कहा था।

"क्यो रे होश नही रखता" हरगोविन्द ने उबलते हुए कहा। किसनू थरथरा रहा था। भयभीत होते हुए उसने सच्चाई व्यक्त की—"कचरा हटाते पत्थर खिसक गया था।" "देखो मौसी ने मुझे कितना पीटा है।" रोते-रोते उसने पीठ दिखाने का प्रयत्न किया। हरगोविन्द ने डाटते हुए कहा, "मौसी ने क्या पीटा है पीटूगा तो मैं, दिन-ब-दिन बिगड़ता जा रहा है।" कहता हुआ हरगोविन्द रसोई घर मे घुस गया किसनू किसे कहे?

सर्दी की रात्रि तड़के चार बजे बालक ने सड़क पकड़ ली। दस मील का रास्ता तय कर आ पहुचा शहर में—गलियों में भटकता हुआ वकील प्रेममुख के यहां। रोहिणी की दया ने उसे नवजीवन दे दिया। तब से वह यही टिका था। बीरू की उगली कटने पर उसने प्रथम बार एक मा का अनुभव किया था।

किसनू चिल्ला रहा था—बीबीजी मुझे मत भेजो। मैं बहुत अच्छा काम करूंगा। रोहिणी की आखें सावन-भादो हो गई। "ह [illegible] े रखना।" आप पिता हैं अत. हमारी क्या चले। बाकी [illegible] जैसा ही लगता है।"

"ओ हो आखिर जन्म दिया है। [illegible] ? है तभी तो आ गया था। आपकी [illegible] रहा था देख पीछे रहा [illegible] आखें पोछती- [illegible] ने उसमे अपना

मार पीट किया हो। फिर सोचती 'मुझे क्या, दुनिया में बहुत से बच्चे हैं।' लेकिन चाह कर भी वह किसनू को भुला नहीं पा रही थी। उसका भोला चेहरा, मीठी आवाज, मोहिनी को लगता जैसे किसनू कहा नहीं, कहीं इधर-उधर छिपा है। दिन बीते, स्मृति विस्मृति तो नहीं धुंधली होती जा रही थी।

नवीन साहब गांव से करीब भी दस बजे ही घर पहुंचे थे। स्कूटर की आवाज पहचान मोहिनी ने दरवाजा खोला। बरामदे की लैंप लाइट जल रही थी। कोने में एक बच्चे को पड़ा देख वह घबरा गई।

अरे कौन किसनू? उसे होश नहीं था। हाथ पैर ठंडे पड़ रहे थे। पति पत्नी दोनों ने बालक को अन्दर ला पलंग पर लिटाया। मोहिनी घबराती हुई हाथ मलने लगी। पानी की थैली से छाती पर सेक किया। किसनू ने आंखें खोलीं, मुस्कुराया—"बीबीजी।"

"हां बेटे, मां, तुम्हारी मां।"

"मुझे वापस तो नहीं भेजोगी?"

"कभी नहीं!" डॉक्टर उसके पतले बाजू पर इन्जेक्शन लगा रहा था। □

डेनियल, तुम हार कर भी जीत गए

दशरथ कुमार शर्मा

सुन्दर, लम्बे कद, गौर वर्ण, उत्तम स्वास्थ्य व हंसमुख स्वभाव वाला सहयोगी व उदारवादी विचारधारा और बात का धनी डेनियल एक समाज-सेवी संस्था में अधिकारी के पद पर था, तथा उसकी देख-रेख में कुछ ग्रामीण स्त्री, पुरुष अकाल की मार से पीड़ित भीषण गरमी में उसके कस्बे से कुछ किलोमीटर दूर एक गाव में सड़क निर्माण-कार्य में लगे हुए थे।

वहां के लोगों को ऐसा लगता था जैसे वो सड़क उनके गाव को सीधा राज्य व देश की राजधानी से जोड़ देगी। वह अविवाहित था, एक अधेड़ आयु की महिला उसे कुछ अधिक ही प्रेम व श्रद्धा के साथ देखने लगी थी। उस हंसमुख महिला की सहज, सरल व आत्मीयता-भरी बातें तथा उसका निर्मल मन उसे उस कार्यस्थल की कड़ी गर्मी में भी बड़ी राहत दिलाते थे।

वह महिला उसे शुभकामनाएं व धन्यवाद देते समय कई बार अपनी लक्ष्मण-रेखाओं को पार कर जाती थी, तब वह न जाने क्यों ये दो पंक्तियां गुनगुनाने लग जाता था।

> तुम जो इतना मुस्करा रहे हो,
> क्या गम है जिसको छुपा रहे हो।

दो माह के लम्बे अवकाश पर रहने के बाद एक दिन जब वह मध्यान्तर में अपने कार्यस्थल पर पहुंचा तो उस दिन मजदूरनियों की झोंपड़ी के पास से गुजरने पर उसमें से आती हुई हंसी मजाक की आवाज एक दम से तेज हो गई। उसने उन महिलाओं से उनकी प्रसन्नता का कारण पूछ ही लिया। उन्होंने उस बातूनी स्त्री का नाम लेते हुए कहा कि उसकी झोपड़ी में एक पुत्र हुआ है। अन्दर से उस महिला की प्रसव पीड़ा की आवाजें भी आने लगी।

प्रसन्नता उसे भी हुई, क्योंकि काफी लम्बे समय बाद उस महिला को अपनी

प्रथम सन्तान का सुख देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। पर अचानक डेनियल के प्रफुल्लित मानस को गम्भीरता की चादर ने ढक दिया। मनुष्यता प्रश्नवाचकता हावी हो गई, और उसे लगा जिस देश में वातानुकूलित व साफ-सुथरे नर्सिंग होम हों, वहां एक मजदूरनी का सड़क किनारे पत्थर पर प्रसव-पीड़ा को झेलना घोर अन्याय है। उसने कहा — ये क्या तमाशा है? इस महिला ने ऐसी अवस्था में काम पर आने की नादानी क्यों की।

अन्य मजदूरनियों ने जो कहा उसका आशय था — मजदूर भूखे पेट की पीड़ा प्रसव-पीड़ा से कहीं अधिक होती है।

उसने बात को आगे बढ़ाना उचित नहीं समझा और उन महिलाओं को जच्चा का अच्छी तरह ध्यान रखने के निर्देश देते हुए, (डेनियल ने) एक अन्य मजदूर को तुरन्त अपनी जीप लाने भेज दिया। उसके कार्यालय से दो मिनट बाद ही जीप आ गई। ड्राइवर को भी इस प्रकार अचानक बुलाये जाने पर आश्चर्य हुआ। जीप के आते ही उसने महिला मजदूरों को जच्चा-बच्चा को जीप में बैठाने तथा उसके साथ दो महिलाओं को भी कस्बे के सरकारी चिकित्सालय तक चलने के आदेश दे दिए।

पूरा वातावरण एक दम शान्त, गम्भीर व भय मिश्रित हो गया। तभी इस घटना की नायिका अपनी गोदी में छिपी वस्तु को, अपने आंचल में अच्छी तरह छुपाती हुई उस झोंपड़ी से बाहर निकली, तो उसे लगा जैसे उसकी ये मुस्कान सारे संसार के नर्सिंग होमों की हंसी उड़ा रही है। सृजन के सुख के कारण उसकी मुस्कराहट और भी मधुर हो गई थी।

डेनियल के कस्बे में सन्तान उत्पत्ति के अवसर पर महिलाओं द्वारा गाये जाने वाला लोकगीत, जिसमें जापे के अवसर पर 'सास को बुलाया वो नहीं आई, भावज को बुलाया वो नहीं आई, ननद को बुलाया वो नहीं आई, बहन को बुलाया वो भी नहीं आई, मैं तो अस्पताल में अंग्रेजी जापा करा लूगी उसे बिलकुल बेतुका लगा।

उसे लगा कि वो महिला जीप में बैठने के बजाय पुनः अपने कार्य में लग जाना चाहती है। अतः उसने, उसे पुनः जीप में बैठने के आदेश दिए। उस महिला ने घबराते हुए अपने आंचल में से कपड़े में लिपटे हुए एक पत्थर को निकाला और कहा साहब मैंने तो इसको जन्म दिया है। मैं आपसे हाथ जोड़कर माफी मांगती हूं। गुस्से में डेनियल जीप में बैठकर अपने कार्यालय आ गया। जीप के चलते ही अन्य महिलाओं की तेज हंसी उसे ऐसी लगी जैसे वे उसकी नादानी पर ही हंस रही हों।

कार्यालय पहुंचते ही उसने एक कर्मचारी के हाथ सन्देश भिजवाते हुए उस महिला को तुरन्त उसके कार्यालय में उपस्थित होने के आदेश दिए। कुछ ही देर

ए। उन्हें कमरे से पृथक किये जाने का भय था। शायद इसीलिए उस महिला ने
गके कक्ष में घुसते ही अपनी गलती के लिए एक बार पुनः क्षमा याचना कर ली।
सके पति ने भी ऐसा ही किया।

डेनियल का गुस्सा शान्त हो गया, और उन तीनों की हंसी से कमरे का वाता-
रण शुद्ध हो गया। उसने उस महिला से पूछा कि उसे इस प्रकार का मजाक करने
की क्या आवश्यकता थी। उसका जवाब था, साहब मैं कभी मां नहीं बन पाऊंगी,
पनी कमी पर स्वयं जी भर कर हंस लेने से तथा दूसरों को भी उस पर जी भर
र हंसा देने से दूसरे व्यक्तियों को कभी भी मुझ पर व्यंग्य करने का अवसर नहीं
मलता है। उसके पति के चेहरे के हाव भाव से भी ऐसा लगा जैसे अपनी पत्नी
की इस कमी को उसने भी भाग्य का दोष मानते हुए हंसते हुए स्वीकार कर
लिया है।

डेनियल के पैरों के नीचे से जमीन खिसक गई। उस अनपढ़, निपट गंवार
मजदूरनी के स्वयं पर हंसने के साहस की मन-ही-मन प्रशंसा करते समय उसे ऐसा
लगा जैसे वह अनपढ़ औरत के एकाभिनय के आगे हार गया। इतना सुन्दर अच्छा
र अभिनय, दर्शकों के साथ इतना सुन्दर संवाद, इतना सुन्दर नुक्कड़ नाटक।

ये डेनियल की भावुकता थी, या फिर था उसका भ्रम, कि उसे तो उस दिन,
उस महिला के आंचल में छुपा हुआ पत्थर भी, मां के आंचल में स्तनपान करते
हुए एक शिशु के समान हलचल करता हुआ प्रतीत हुआ।

आज तक डेनियल अपनी उस हार का आनन्द ले रहा है। यद्यपि आज वह
अच्छे पद पर है, परन्तु फिर भी वह अपनी उस हार पर गर्व करता है, क्योंकि उस
हार के साथ-साथ, उसी महिला के शब्दों में डेनियल की मानवीयता, गंभीरता व
कर्तव्यपरायणता की जीत हो गई थी। □

सवेरा

त्रिलोकी मोहन पुरोहित

पदम ने अपने बापू को सामने देखा। हृदय धक्-धक् करने लगा। अभी खरखराती आवाज में पूछेगा—'क्यों जी लाटसाहब! कहां से आ रहे हो? या, क्यों बे! कहां गंडक मारता फिरता है? या···?' ऐसे ही अनेक प्रश्न उसके ऊपर उछल-उछल कर आ रहे थे।

वह कई बार ईश्वर से प्रार्थना कर चुका है। उसका सामना उसके बापू नारायण से न हो तो बहुत इच्छा हो। परन्तु हर बार वह अपने बापू को अपने ही सामने खड़ा पाता है।

आज तो बहुत देर कर दी घर आने में। स्कूल से छूटते ही राजेन्द्र के फंदे में फंस गया था। वह अपने बापू की पीठ के पीछे से होकर निकला। नारायण ने पुत्र को जाते देखा। एक पल पिता-पुत्र की नजरें मिली। पदम कांप कर रह गया। तेजी से चौक पार कर वह रसोई की ओर लपका, जहां मां खाना पका रही थी।

मां ने पदम को देख, आटा गूंधना छोड़ दिया। वह झिड़कती हुई बोली—'क्यों रे पदमा! कहां रह गया था? स्कूल से आने में बहुत देर कर दी। कहां था रे?'

उसने एक बारगी बाहर की ओर देखा। उसका बापू नारायण तम्बाकू हाथों में मसलकर पीट रहा था। उसने दबे स्वर में कहा—'मां! मैं डाणे वाले भागू से गणित सीख रहा था।'

पदम ने सरासर झूठ बोला था। यही बात बापू को कहनी होती तो जीभ तालू से चिपक जाती। मां के सम्मुख बोला गया झूठ भी वह पूर्ण आत्मविश्वास जताकर सत्य साबित कर रहा था। मां से उसे ज्यादा डर नहीं लगता। डर लगता है तो बापू से।

मां ने खीजते हुए कहा—'तुझे कितनी बार कहा है, स्कूल की छुट्टी होते

ही सीधा घर चला आया कर। पर तू तो उस समुन्दरा के छोरे राजेन्दरा के साथ फिरता रहता है।'

पदम ने एक बार फिर बाहर झांका। बापू 'सण' के तागों में बंट डाल रहा था। वह मां के पास आकर बैठ गया। धीरे से फुसफुसाकर बोला—'नहीं मां, मैं तो राजेन्द्र से बोलता तक नहीं हूं।'

मा ने उसकी आंखों में आंखें डालकर कहा—'देख रे पदमे ! मैंने तुझे अपनी कूंख से पाला है। झूठ मत बोला कर। मैंने खुद आंखों से देखा है। उस भूतनी के जाये राजेनदरिए के साथ तू आ रहा था।'

पदम का मुंह उतर गया। उसने गिड़गिड़ाते हुए कहा—'मां ! धीरे बोल न। बापू सुने तो···। अब नहीं रहूंगा उसके साथ। तेरी कसम खाता हूं। बापू से मत कह देना।'

नारायण ने पदम को आवाज दी। वह कांप गया। वह जाने लगा तो मा ने कहा—'सुन, बापू पूछे देर क्यों हुई ? कहना, मैंने तुझे गिरधारी से दूध का पैसा लाने भेजा था। वहां होकर आने से देरी हो गई। समुन्दरा के छोरे का नाम मत लेना।'

पदम को थोड़ी तसल्ली हुई। मां कितनी अच्छी है। उसने अपना सिर हिलाया और बापू की ओर चला गया।

नारायण ने उसे सण की गूतलियों का एक सिरा पकड़ा दिया। दूसरे सिरे पर उसने बंट लगाने की चरखी लटका दी। वह बंट लगाने लगा और सण के तागे रस्सी का आकार लेने लगे।

पदम मन-ही-मन आशंकित था। 'क्यों रे, स्कूल से इतनी देर आने में कैसे लगाई ? कहां गया था ?' अभी बापू पूछेगा। बापू ने जुम्हाई लेने को मुंह उठाया। उगे उगता, अब पूछा सवाल। अब पूछा।

नारायण एक लय में तागों के बंट लगा रहा था। पदम मन-ही-मन उत्तर दोहरा रहा था—'मां ने मुझे गिरधारी से दूध का पैसा लाने को बोला था। आती बेर गिरधारी से पैसे लाना। मैं गिरधारी के घर गया था। वहां से सीधा आ रहा हूं। देर हो गई।'

पदम मन-ही-मन खुश हुआ। 'मां ! अच्छी मा। कितना खयाल रखती है। क्या खूब हल सुझाया। चलो अच्छा हुआ। वर्ना, नाहक लताड़ पड़नी। दो-चार धौल बापू लगाई बजा देता।' उसके विचारों को एक झटका लगा। 'अरे, बापू पूछेगा पैसा लाया, तो क्या कहेगा ?' उसकी इच्छा हुई पानी पीने के बहाने अन्दर जाकर मां से पूछ ले। इस प्रश्न का उसे क्या उत्तर देना होगा ? नहीं तो, मां की भी पिटाई होगी। उसने नारायण की तरफ देखा। वह बंट लगाने में मशगूल था। हिम्मत नहीं हुई। बापू अभी डांट देगा। कहेगा—'लो, थोड़ा-सा

धड़ा रहने को कहा। जिसमें माली भर रही है। पानी दीता है। अरे, कुछ और लगाऊंगा। दिमाग दुरुस्त कर दूंगा। नुकसान उसके बाप।'

उसका चेहरा सहज गया। नहीं उसे कोई पानी-वानी नहीं दी गई, वह वैसा—'सिरमाथी के पर ताना था। कोई भी नहीं मिला।' माटक क्यों उसने, अब कुछ नहीं बाकी है।

नारायण भरनी को भिगाता जा रहा था। जब वह मस्त होकर कोई काम करता है तो कुछ गुनगुनाता जाता है। उसकी भारी आवाज में वह गुनगुन अच्छी लगती है। पदम को बापू की यही मस्ती तो अच्छी लगती है, परन्तु बापू जब उखड़ जाता है, तब पूरा 'नसाखिरा' बन जाता है। बाप रे! कहां-कहां की गाली उगलेगा। सुनकर कान के पर्दे फट जाते हैं। फौज की नौकरी क्या करी, अभी भी पूरा फौजी अकड़ में रहता है।

अचानक पदम के अधपके मन में विचार उठा—'कहीं बापू ने भी मां की तरह देख तो नहीं लिया राजेन्द्र के साथ? वर्ना सारा गेम चौपट हो जाएगा। बापू भी मांओं में एक है। पूरी बात सुनकर ठहाका लगाएगा। रामलीला के हनुमान की तरह। कान खींच कर कहेगा, 'क्यों री गिलहरी की दुम! मुझसे ही झूठ बोलता है। अरे मैं मिलिटरी का हूं। कई हवाई जहाजों को आकाश से ऐसा गिराया कि जमीन पर आज तक उनके निशान हैं। पूरा बोर्डर जानता है नारायण को। मुझसे ही आंख-मिचौनी करने लगा है। फिर करेगा पदम की धुनाई।" पदम ने इसी के साथ पीछे हाथ ले जाकर 'दुम' को टटोला। हाथ इधर-उधर तलाशी लेकर फिर रस्सी की पकड़ पर आ गया।

उसने अपने पिता को ध्यान से देखा। पहले जब बापू नौकरी करता था, कभी-कभार आता छुट्टी-छपाटी में, 'गोद में उठाता और चूमा करता था। अब इसे क्या हो गया है? पदम ने एक नजर खुद पर डाली। अरे, वह भी बापू जैसा बन सकता है। बापू से मान तक तो लगता है। अब कौन चूमेगा? आदमी है वह आदमी। पूरा मर्द! इसी के साथ हाथ नाक के नीचे से जाकर कच्चे उग आए बालों पर अंगुलियां फिराने लगा।

वह इतना बड़ा हो गया। फिर भी बापू की नजर में एकदम कच्चा गोबर-गणेश। पदम का सोच एक नई दिशा में चला गया—"मैं क्या करता हूं, कहां जाता हूं? सब खबर बापू की जेब में पड़ी मिलती है। पूरा का पूरा 'रडार' है, रडार। राजेन्द्र भी तो कहता है। उसका बापू भी ऐसा ही है। उसी ने तो बापू का नाम 'रडार' रखा। इस पिता नामक जीव का ऐसा उपनाम बना कि स्कूल में खूब चला यह। किसकी जीभ पर नहीं चढ़ा हुआ है? किसी के बापू आए। दसियों छोरे बोलेंगे—'लो रे पदमे का रडार आया है।" लछमने! देख तेरा रडार आया है।' फिर एक साथ लड़कों का झुण्ड मिलकर खी-खी करेगा। उसकी इच्छा हुई

कि वह ज़ोर से खिलखिलाए पर बापू को देख चुप होना पड़ा। वर्ना 'रशार' पर खूब हंसता।

नारायण की आवाज़ से पदम का ध्यान बंटा। वह पदम को कह रहा था—'अरे पदमे ! ऊंघ मत मोडे की तरह। रस्सी खींच के रख, खींच के।'

पदम तुरन्त सम्भल गया। उसने देखा रस्सी बीच से झूल गई है। आंगन को छूती रस्सी अपने वंट में तिनके लपेट रही थी। उसने रस्सी को थोड़ा खींच लिया। नारायण पुनः वट लगाने लगा।

पदम को लगा कि आज बापू मूड में है। इसलिए ज्यादा पूछताछ नहीं की। पदम ने मन-ही-मन प्रार्थना प्रारम्भ की—'हे चारभुजा नाथ ! आज बापू से बचा लेना। हे भगवान रक्षा करो। तुम्हारे पके डोचरे (ककड़ी) का भोग लगाऊंगा। अब राजेन्द्र के साथ कहीं नहीं जाऊंगा।'

राजेन्द्र और पदम में गाढ़ी छनती है। दोनों ही बचपन के साथी। साथ-साथ खेलना। अनेक सपनों के ताने-बाने साथ-साथ बुनना। अपने-अपने विचारों से एक-दूसरे को परिचित रखना खास शौक बन गया। दोनों की मित्रता कभी गांव का सिर-दर्द बन जाती थी। कभी किसी की बकरी का दूध मुंह लगाकर पी लिया। कभी किसी के खेत से भुट्टे तोड़ लिये। घर तक शिकायत और पिटाई आम बात हो गई।

कभी दोनों मित्र साथ न दिखाई देते तो गांव के बड़-बूढ़े तक पूछते—'क्यो रे लंगूरिया, तेरा जोड़ीदार कहां है ?' कभी दोनों एक साथ बैठे दिखाई देते तब प्रश्न होता—'कहां सेंध लगाओगे ताऊ, मिलके ? हमारा लम्बर तो नहीं लिया जा रहा है ?'

दोनों किशोर हंसकर रह जाते। या कहते—'सभल के बावा। आगे देखो, आगे। ठोकर मत खा जाना।' इसी के साथ दोनों खिलखिलाकर भाग जाते।

अचानक गांव में एक घटना घट गई। यह घटना क्या हुई बस, दोनों की मित्रता पर बन्धन लग गया। गांव के कुछ असरदार लोगों ने चरनोट की जमीन कब्जे में कर ली। पदम का बापू नारायण ताव खा गया। उसने चरनोट खाली करवाने की लाख कोशिश की। बात नहीं बनी। नारायण का अन्दर का फौजी जाग गया। उसने गांव के रास्ते की लम्बी चौड़ी जगह अपने खेत में मिला ली।

नारायण के खिलाफ पचायत बैठी। नारायण अड़ गया। 'चरनोट की जमीन खाली करोगे तब गेल की जमीन गुगा।' नारायण को गांव के बाहर कर दिया। कुछ लोग नारायण से भी आ मिले, परन्तु राजेन्द्र का बापू समुन्दर सामने वाले गुट में ही रहा। कई दावे हुवे। तू-तू, मैं-मैं हुई और बन्दूकें भी तन गई। समुन्दर नारायण की आख मे खटक गया। इस घटना के बाद पदम और राजेन्द्र मिलते।

पहले की तरह नहीं, छुप छुपके मिलते । दोनों के [illegible] खेत में या बागान में मिलते ।

पंचायत के फैसले के बाद नारायण अपने पुत्र के भविष्य के प्रति अति-सतर्क हो गया। उसके साथ कई लोग दलित और दीन थे। वह अपने बच्चे को कभी अकेला जाता तो मन में बड़बड़ाता—'इस गांव में बड़े [illegible] लोग हैं, [illegible]। गांव की [illegible] हाथी बना गए। और सब लोग भी [illegible] हुए हैं।'

सशंकित पदम की मां कहती—'सब के पीछे तुम क्यों हाथ धोकर पड़े हो? पूरे जग को दुश्मन बना बैठे। अरे मैं पूछूं, कोई तीर कर मारे छोरा को दुश-बावड़ी में धकेल दे तो। हमारा क्या हाल होगा?'

नारायण थोड़ा गर्म होते कहता—'तू है भागभरी। भगवान की सेना भी कोई ऐसा होती है। किसकी हिम्मत जो छोरा की ओर आंख उठाकर भी देखे।'

नारायण यह बात बड़े जोश से कहता परन्तु अन्दर ही अन्दर सशंकित भी हो जाता। वह पदम को पास बुलाकर कहता—'पदमे! कोई कभी कुछ खाने के लिए दे तो खाना मत। आजकल लोग जहर मिला देते हैं। किसी के साथ कहीं कुएं-बावड़ियों की ओर मत जाना। आप तो ध्यान रखना। हमारे बहुत दुश्मन हो गए।' पदम अनमने ढंग से सिर हिला देता। नारायण का भय यहीं खत्म नहीं हुआ। वह किसी ओझा से तावीज भी बनवा लाया और पदम के गले में लटका दिया।

अब धीरे-धीरे नारायण की शंका बढ़ती गई। उसे चिन्ता थी तो अपने पुत्र की। उसके मित्रों पर शंका। उसके कहीं आने-जाने तक में सदेह होता था राजेन्द्र को देखते ही लगता सांप सामने आ गया हो। पदम घर में कैद होकर रह गया। उसकी तबीयत होती थी कि वह भी उन्मुक्त बच्चों के साथ खेले-कूदे परन्तु नारायण ने पूरा 'मार्शल' लगा दिया था। वह कसमसा कर रह जाता।

पंचायत के फैसले के बाद बच्चे भी गांव में बंट गए। स्कूल जाने-आने वाले साथी अब पदम से कन्नी काटने लगे। अब उसे कोई खेल में सहभागी नहीं बनाता। न कोई उसके साथ बोलने या आने-जाने में हिम्मत दिखाता। पंचायत का सभी को डर था। सभी ने शायद अपने-अपने बच्चों को पदम के साथ न रहने का पाठ पढ़ा दिया था।

राजेन्द्र गांव के सभी बच्चों से बिल्कुल अलग रहा। पूर्व में तो उसकी मित्रता यथावत रही। शीघ्र ही उसके पिता को पंचायत ने चेतावनी दे दी और राजेन्द्र के पिता समुन्द्र ने भी उस पर पाबन्दियां लगा दीं।

दोनों ओर से बच्चों पर सख्त पाबन्दियां उनकी मित्रता के लिए पोषक ही

रही। अब वे सभी के सामने अलग-थलग रहते, परन्तु इधर-उधर छिपते-छिपाते मिलते। इत्ती-वित्ती या चरभर का खेल खेलते। सोलह सारी बिछती, बनती-बिगड़ती। घंटों किशोर कलाबाए हवा लेती। खेल चला करता।

दोनों बाल मित्रों को खेल और गप्प मारने में समय का पता नहीं चलता। घर वाले इधर-उधर आवाजें देते, तब छिप-छिपाकर घर भागते। सौ-सौ बहाने बनाए जाते। जमकर पिटाई होती। दोनों परिवार एक-दूसरे पर आक्षेप लगाते कि उनका लड़का उसके लड़के को बिगाड़ रहा है।

दोनों मित्र एक-दो दिन तक अंकुश में रहते। पुन. इधर-उधर भागकर अपने खेल में लग जाते। घर जाने से पूर्व चारभुजा नाथ से अपने-अपने बचाव की प्रार्थना करते।

इधर इन दिनों पदम और राजेन्द्र में एक जबर्दस्त बदलाव आ गया। दोनों को अपने-अपने पिता खटकने लगे। दोनों में एक अन्तर भी आ गया। पदम अब खोया-खोया सा अपने बापू से हर समय दूर रहने लगा। परन्तु राजेन्द्र अब हर बार अपने बापू से टकराता और अड़ियल होता गया। दोनों के हृदय में एक विद्रोह की ज्वाला धधक रही थी। एक शान्त और प्रच्छन्न थी तो दूसरी भभकती और प्रकट रूप लिए हुए थी।

नारायण ने रस्सी को झटका दिया। पदम का ध्यान भंग हुआ। बापू ने तैयार रस्सी को खीचकर कहा—'जा, अपना काम कर।'

पदम मन-ही-मन प्रसन्न हुआ बापू ने उसे कुछ भी नहीं कहा।

पदम मां के पास चला गया। गर्म-गर्म रोटियां उतर रही थीं। मां ने थाली में रोटियां और गुड़ रख, उसे दे दिया। उसकी इच्छा नहीं हुई कि रोटी खा ले। भूख थी परन्तु खाने की इच्छा नहीं। मां और बापू के बारे में सोचकर थाली खींच ली। जैसे-तैसे कौर गले में ठूसे। मां ने और रोटी बढ़ाई तो मना कर दिया और उठ गया।

मां ने झुंझलाकर कहा—'अरे रोटी तो खा ले।'

पदम ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया—'भूख नहीं है अब।' वह जाने लगा तभी नारायण आ गया। उसने मां-बेटे की बात सुन ली। उसने पदम की मां की ओर देखकर पदम को पुनः रोटी खाने बिठा दिया।

नारायण ने पदम को देखा। थाली को पदम की ओर बढ़ाते कहा—"खाओ। रोटी खाओ।"

पदम ने बापू की ओर देखते हुए कहा—'खा तो ली।'

नारायण ने कहा—'कितनी रोटी खाई ? दो, बस दो रोटी। दो रोटी से क्या होता है ? चलो दूध ले लो। उसमें खाओ।'

मां ने भी कहा—'खा ले बेटा।'

पदम 'भूख नहीं है' कहता हुआ उठ खड़ा हुआ और अन्दर खिसक गया। माँ-बाप एक-दूसरे का मुंह ताकते रहे। नारायण बड़बड़ाने लगा—"किस बात पर मूड हो गया। अभी एक तमाचा लग जाए तो बाबू का दिमाग दुरुस्त हो जाए।"

पदम की माँ ने शान्त रहने के लिए कहा, तो नारायण उबल पड़ा। वह दर्द होकर कहने लगा—"यह सब तेरी वजह से हो रहा है। बड़ी शैह में फूल रही है। तूने ही तो बिगाड़ दिया ना।"

माँ जानती है कि अभी बोलने का मतलब तूफान लाना है, वह चुप रही।

पदम अपनी पोली में खड़ा हो गया। सामने चौराहे के धूल भरे मैदान में नीम की ठंडी छांव में गांव के छोटे-बड़े लड़के आ जुटे। कबड्डी का खेल होने लगा। लड़के चिल्ला रहे थे—"मेरा कबड्डी लाल-लाल, तेरी मूंछें लाल-लाल। होए कबड्डी-कबड्डी-कबड्डी। चेन बनाओ रे चेन। इधर आके देख, अभी बताऊं। होह होह हो ए ए डरो मत, डरो मत। मच्छर है मच्छर। मटमाई सामी मेंढकी है। पकड़ो-पकड़ो - हाय मरोड़ो। मरे बाप रे! छोड़ो-छोड़ो। मर जाएगा बेचारा। कचूमर निकल गया। कचूमर मई, गोबर, गोबर···। ही ही ई इ इ इ, हा हा हा आ आ···।" एक लड़का दाब लिया गया। पकड़ने वाले नाच रहे थे, बिल्कुल भोंडे ढंग से। बन्दरों की तरह पीले-पीले दांत निकालकर खी-खी कर रहे थे बने भूखे। पदम का मन भी हो रहा था, वह भी खेले। इन मटकने वालों को वह ऐसी खेल में पटकी दे कि मजा आ जाए।

नारायण घर में नहीं होता तो वह भी वहां चला जाता। वे लोग उसे साथ नहीं खिलाते। न खेलता परन्तु वह भी चिल्लाने का मजा तो ले सकता था। मन मारकर पोली में ही खड़ा रहा और उनके खेल से आनन्दित हो हंसने लगा।

पदम को पता नहीं, कब उसका बापू भी पीठ पीछे पोली में बैठ गया। लड़के खेल रहे थे। खेल ही खेल में एक लड़के की निकर का हुक छिटक गया। उसने एक हाथ से निकर संभाल रखी थी और कबड्डी-कबड्डी करता-चिल्लाता पाले में उछल-कूद कर रहा था। एक जोर से हौंक लगी हे हे ए ए। बच्चे उछलने लगे। पदम अपने आपको भूल गया। वह भी वहीं से हाक लगा बैठा हे ए ए हुर्र र र···।

पदम को चिल्लाता देख नारायण ने उसकी पीठ पर हाथ मारा। हाथ पड़ते ही पदम का आनन्द न जाने कहां चला गया और मन ठस हो गया। हृदय भर आया। नारायण ने डांटते हुए भगाया—"अबे, चिल्लाते शरम नहीं आती। भड़ए की तरह खें-खें करता है। हम कुछ कहें तो मुंह फुलाएगा। चल, अन्दर जाकर पढ़ाई-लिखाई कर। लगुरिया की टोल से संगूर बना तो ठीक कर दूंगा।"

पदम मन मारकर लज्जित-सा अन्दर चला गया। कुछ लड़कों ने नारायण द्वारा पदम पर लगती फटकार को देख लिया। कुछ लड़के खिलखिलाकर हस पड़े। नारायण की इच्छा हुई एक-एक का कान पकड़ इनके घरों मे धकेल आए। भरी दुपहरी में भी चैन नहीं लेने देते।

पदम अन्दर जाकर पुस्तक खोलकर बैठ गया। आखें पुस्तक पर गड़ी रहीं। मन बाहर उलझा रहा। अपने बापू के बारे में सोचता रहा। राजेन्द्र के बारे मे सोचता रहा। कबड्डी के बारे मे सोचता रहा। अन्दर-ही-अन्दर एक घुटन थी। अब आखो की राह बाहर आने लगी टप् टप् टप्।

सध्या वेला हो गई। मन्दिर में घण्टियां बज रही थीं। नगाड़े बज रहे थे। शखनाद हो रहा था। आरती होने वाली है। पदम की इस मनोहारी गूज से आख खुल गई। बदन आगन मे ही सोया रहने से ऐंठ गया था। मीठा-मीठा दर्द हो रहा था। उसने आखें बन्द कर ली। उसके कानो मे उसके मा-बापू की आवाजें आने लगी।

नारायण—"देख अभी तक सोया पड़ा है। मेरी तो समझ मे नही आता इसे हो क्या गया है?"

मा—"तुम हर बगत इसके पीछे क्यों पड़े रहते हो? बालक है। समझ आते आएगी।"

नारायण—"पूरा पन्द्रह का हो गया। समझ नाम की तो कोई इसमे चीज ही नही। कितनी बेर समझाया, समुन्दरा के छोरे के साथ मत मारा-मारा फिर। मानता ही नही। पढ़-लिख जाएगा तो जिन्दगी बनेगी इसकी।"

मा—"बच्चा-बच्ची अपने जैसो के साथ ही खुस रहा करे। तुम चाहो कि ये आज ही सयाने हो जाएं। कैसे होगा? पढ़ना-लिखना भी हो जाएगा।"

नारायण—"गाव में और भी तो छोरे हैं। उनके साथ रहा करे। इसके पीछे समुन्दरा बीस बातें सुनाता है।"

मा—"बडे-बुढ़ऊ की रार मे इन बच्चों को क्यू लेते हो? मुझे तो डर लागे है। कभी छोरा हाथ से न निकल जाए। राजेन्द्र मे क्या बुराई है? यही न, समुन्दरा का छोरा है। मैं समुन्दरा से बात करूंगी।"

नारायण—"औरत जात को मर्दों की बात मे टाग नही अड़ानी चाहिए। ज्यादा पडिताइन मत बना कर। समुन्दरा साप है, सांप।"

पदम ने मा की बात सुनकर करवट बदली। मा आवाज दे रही थी—"पदमा रे, उठ जा बेटा। देख कवेनी-बगत हो गई। जा चारभुजा नाथ के जोत रख आ।"

[illegible]

राजेन्द्र ने मुंह फिराकर कहा—"हूं, देखा, क्या हो रहा है?"

पदम ने इधर-उधर आश्चर्य होकर देखा। कोई दिख भी नहीं रहा। फिर [illegible] हो जाने पर कहा "किसी ने देख लिया क्या?"

राजेन्द्र ने निश्चिन्त भाव से कहा—"कुछ नहीं होगा। अरे, जल्दी चलो। [illegible] बच कर चलो।" [illegible] उसने एक अंधेरे कोने की तरफ संकेत कर दिया।

दोनों फिर मन्दिर से निकलकर एक अंधेरे कोने में खड़े हो गए। [illegible] कुछ दिखाई नहीं देता था। राजेन्द्र ने पदम का हाथ पकड़ते पूछा—"क्यों, पदम आज पिटाई तो नहीं हुई?"

पदम ने कहा—"आज तो मां ने बचा लिया [illegible]। वर्ना बापू आज तोड़ देता।"

राजेन्द्र—"क्यों क्या हुआ? बड़ी देर ही हुई न?"

पदम—"मां ने हमको साथ-साथ देख लिया था। मगर किसी से कही नहीं मानी। बस बापू से बोला नहीं। नहीं तो ...।"

राजेन्द्र—"अच्छा हुआ यार तू बच गया।"

पदम—"क्यों तुझे मार पड़ी?"

राजेन्द्र—"नहीं बेटा! मुझे मार नहीं पड़ी। खूब बापू ने लाड़-लड़ाए।"

दोनों की समवेत स्वर में हंसी गूंजी। मानो अन्धेरे कोने में किसी ने जल-तरंग को छेड़ दिया हो। हंसी के बाद—

पदम—"हम साथ-साथ रहें या न रहें, यार! घर घर तो सताड़ पड़ती ही है।"

राजेन्द्र—"मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता अब घर पर।"

पदम—"अच्छा लगे या न लगे, इससे किसी को क्या? घर में रहना ही पड़ता है।"

राजेन्द्र एक लम्बी श्वांस छोड़ते हुए—"पदमे! मैं अब घर में नहीं रहूंगा।"

पदम चौंकते हुए बोला—"क्या? घर में नहीं रहेगा? घर पर नहीं रहेगा तो जाएगा कहां?"

राजेन्द्र—"कहीं भी चला जाऊंगा। दिल्ली-बम्बई या जेपुर जहां भी मन करेगा।"

पदम ने उसका हाथ पकड़ते तनिक भय से कहा—"पर यार, तू तो पहले कहीं नहीं गया ? वहां तो बहुत लोग हैं। बड़ा शहर है। कहां रहेगा ?

राजेन्द्र—"अरे तू डर मत। अपना वो यार है न पूरणा, उसी के साथ जाऊंगा।"

पदम—"नहीं, नहीं, राजेन्द्रिये ! उसके साथ मत जा। वह पूरा डाकू है। पूरा गांव जानता है। तुझे भी···।"

राजेन्द्र—"यह सब झूठ है। पूरणा खुद कहता है। उसके बहुत जान-पहचान है। वहीं भी नौकरी दिला देगा।"

पदम—"सच में तू चला जाएगा ?"

राजेन्द्र ने जेब में हाथ डाला और फिर उसे बाहर निकाल कर हथेली पर कुछ रुपये दिखाते हुए कहा—"देख, पूरणा ने अभी से पेशगी दिया है। वहां जाने पर तो मौज होगी मौज।"

अन्धेरे में पदम ने नोटों को छूकर अनुमान लगाया। दस-दस के कुछ नोट हैं। वह सोच में डूब गया।

राजेन्द्र ने पदम के कंधे हिलाते कहा—"पदमे। तू भी चल दे।"

पदम—"कहां ? पूरणा के साथ।"

राजेन्द्र—"हां।"

पदम—"लेकिन···!"

राजेन्द्र—"मैंने उसे बोल दिया है। पदमा आए तो उसे भी नौकरी दिलानी होगी। उसने क्या कहा जानता है ?"

पदम—"क्या कहा ?"

राजेन्द्र—"उसने कहा राजेन्द्र तू मेरा पक्का यार है। तेरा यार पदमा है। तब तो वह मेरा भी यार हुआ। आता हो तो ले आना। अब चल दे तू भी।"

पदम—"कब जाएगा ?"

राजेन्द्र—"कल। स्कूल की टेम। तू चलेगा ?"

पदम—"ठीक है। कल स्कूल की टेम मिल जाएंगे।"

मन्दिर में घंटियां बज रही थीं। पदम ने कहा—चल, भोग ले लें। कहीं कोई देख लेगा तो आफत होगी।

पदम से राजेन्द्र अलग हो गया। राजेन्द्र बहुत प्रसन्न था। पदम अनेक चिन्ताओं में घिरा, घर की ओर भोग लेकर चल पड़ा।

रात भर पदमा को नींद नहीं आई। उसे अनेक ख्याल आते थे। कभी लग
वह रेल में बैठा है। पूरणा और राजेन्द्र उसके साथ हैं। कभी ख्याल आते वे भा
भागे भाग रहे हैं। पीछे-पीछे डंडे लिए पुलिस दौड़ रही है। पुलिस का ध्या
आते ही उसके गात में रोम खड़े हो गए। थर-थर कर कांपने लगा।

उसे ऐसी घबराहट कभी नहीं हुई। इच्छा होती मां के बिछावन पर च
जाए। मां के सीने से लिपट जाए। एक-दो बार उठकर पानी पी लिया। बिछ
पुन: लौटकर यहीं आ जाते।

कभी उसे लगता—उसके बापू और समुन्दर काका पागलों की तरह दौड़ र
हैं। पूरणा उसे शहर दर शहर भगा रहा है। मां छातियां पीट रही है। राजेन्द्र
की मां ने बिस्तर पकड़ लिया है। वह कभी इस करवट लेटता, कभी उस करवट।
नींद उससे कोसों दूर हो गई।

भोर हो गई। कोई पड़ौस में घट्टी चलाती स्त्री गा रही थी। उसकी
मधुर गीत-लहरी ने पदमा को अन्दर तक गीला कर दिया। बैठ गायड़ली बाट
जोवती, बीरा थाने बुलाये ओ ओ ओऽऽऽ। उसने उठकर देखा मां बुहारी कर
रही थी। बापू बैलों को चारा डाल रहा था।

उसने अपने बापू का चेहरा ध्यान से देखा। उसे ऐसा उज्ज्वल चेहरा बापू का
पूर्व में कभी नहीं दिखाई दिया। उसे बापू की कल मां से कही बात याद आ
गई—"पढ़ लिख जाएगा तो…।"

क्या वह मां और बापू को छोड़ जाए? किशोर मन में एक संघर्ष छिड़
गया। मां बापू तो उसके बिना…। राजेन्द्र को क्या कहेगा? वह नहीं जाएगा
उसके साथ। राजेन्द्र क्या सोचेगा? डर गया। राजेन्द्र चला जाएगा तो…।
पूरणा चोर है? हां, हां पूरा डाकू है। गांव से पुलिस पकड़ कर भी तो ले गई
थी। राजेन्द्र भी चोर बनेगा? डाकू बनेगा? वह एकदम घबराहट के मारे खड़ा
हो गया।

यन्त्रवत् सा पदम नारायण के सम्मुख खड़ा हो गया। नारायण ने उसे देखा
तो चौंक पड़ा। लाल भक् और फूली-फूली आंखें। कांपती हुई उसकी देह। उसने
पदम को तुरन्त अपनी बांहों में समेट लिया। नारायण ने उसे बिठाते हुए पूछा—
"क्या हुआ रे पदमा?"

पदम की जीभ चिपक सी गई। वह गें गें करने लगा। नारायण ने सिर पर
हाथ फिराते स्नेह भरे शब्दों में पूछा—क्या हुआ रे?

पदम के अन्दर उमड़ता सोता फूट पड़ा। मां भी कार्य छोड़ पास बैठ गई।

अपने बच्चे की हालत देख वह भी रो पड़ी। पदम ने कांपते हुए कहा—"राजेन्द्र पूरणा के साथ।" वाक्य अधूरा रह गया। फिर रुलाई फूट पड़ी।

नारायण ने चौंकते हुए पूछा—"क्या किया राजेन्द्र का पूरणा ने।"

पदम—राजेंद्र को पूरणा ले जा रहा है।"

नारायण—"कहां ?"

पदम—"दिल्ली-बम्बई या जेपुर ले जाएगा।"

नारायण सोच में पड़ गया। उसने पदम को उसकी मा की गोद में टिका दिया। भाग कर वह अन्दर गया। कमीज खींच कर कन्धे पर डाली और समुन्दर के घर की तरफ दौड़ पड़ा। भागते-भागते नारायण कह गया—"चिन्ता मत कर पदम, राजेन्द्र का कुछ नहीं होगा।" □

कर्मण्येवाधिकारस्ते

मोतीलाल पाटीदार

बस से उतरते ही भीड़ उधर उमड़ पड़ी। नारों से आकाश गूंज उठा। माड़साब जिन्दाबाद ! गोपालजी की जय !! राष्ट्रपति पदक विजेता—गोपालजी भाई गोपाल जी !!! नारों के साथ भीड़ विद्यालय प्रांगण में बने मंच की ओर चली।

गोपालजी को यह सम्मान घुड़ासा स्कूल में कार्यरत रहते मिला था। इस गांव में गत वर्ष से प्रधानाध्यापक के पद पर थे। वैसे नौकरी में सत्ताइस बसन्त पार कर चुके थे। उनके सम्मान का समारोह गांव की ओर से आयोजित किया गया था। आसपास के गांवों के लोग भी आए थे। शिक्षकों की संख्या भी कोई कम न थी। लोग इतने थे मानो कोई राष्ट्रीय नेता आने वाले हों।

माल्यार्पण के साथ समारोह प्रारंभ हुआ। पहले अफसरों ने फिर, गांव की ओर से और अन्त में धम्बोला गांव की तरफ से। धम्बोला गांव की तरफ से सेठ गिरिधारी उठे। माला उनके समान ही मोटी ! क्यों न हो, धम्बोला गांव के सबसे बड़े सेठ, शरीर के साथ पैसों में भी। उन्होंने गोपालजी के पास आकर माला पहनाने को हाथ बढ़ाए, दोनों की नजरें एक हुईं। गोपालजी का सिर झुका नहीं। हाथ माला की तरफ बढ़ गए। पदोन्नति पर आए थे, उस समय सबसे पहले बस से उतरने पर इन्हीं सेठजी से मुलाकात हुई थी।

प्रमोशन की बात सुनी तो घर में खुशी की लहर छा गई। मित्रों ने ढेरों बधाइयां दीं। मिठाइयां बांटी गईं। प्रमोशन तो हुआ लेकिन गांव में हुआ, इसका दुःख था। अच्छे वर्कर के रूप में सिफारिशें की गईं, भाग-दौड़ भी की लेकिन शहर में कहीं रिक्त पद था ही नहीं। दौड़-धूप काम नहीं आई। विचार किया, गांव में जाने से तो शहर और फिर घर पर ही अच्छा है, प्रमोशन का लाभ छोड़ा जाए। उदास चेहरा देख, पिताजी समझ गए। उपदेशात्मक शैली में बोले—"बेटा ! घर छोड़े बिना प्रगति नहीं हो सकती। इतिहास साक्षी है, घर का मोह व्यक्ति की उन्नति में बाधा डालता है। परिस्थिति और स्थान के अनुकूल

ढलना प्रगति की पहली सीढ़ी है। हवा के रुख को देखो और उसके अनुकूल चलो, वही सुखी रह सकता है।" सारी रात नींद नहीं आई, करवटें बदलता रहा, विचारों का द्वन्द्व चलता रहा। आखिर विजय पिता के उपदेश की हुई। प्रातः पहली बस से रवाना हुआ। बस दो घण्टे में धमोला पहुंच गई। वहां से तीन किलोमीटर पैदल जाना था।

अगस्त का महीना, वर्षा मूसलाधार बरस कर थम गई थी। बूंदाबांदी हो रही थी इसलिए छाता जरूरी हो गया। वैसे भी बरसात का मौसम न जाने कब वर्षा तेज हो जाए। पास की दुकान पर जाकर एक छाता उठाकर कीमत पूछी। रुबेदार चेहरा, हाथ में बैग, निखरा व्यक्तित्व देखकर दुकानदार ने कहा 'बाबूजी, आप से क्या पैसे लूं? जो पसंद आए वह ले लो।" गोपाल को महसूस हुआ कि सेठ उदार हृदय वाला है या फिर गांव के लोग दयालु हैं। जेब से पैसे निकालते हुए बोला—"नहीं सेठजी, आपके घर में तो छाता बनता है नहीं। इसकी वास्तविक कीमत ही ले लो।"

हाथ पकड़ते हुए दुकानदार बोला "रहने दो बाबूजी, छाते में क्या जाता है। मेरे लायक कोई काम।"

"मुझे कुड़ावाड़ा स्कूल जाना है। गांव का रास्ता कौन सा है?"

"तुम मास्टर हो।" आश्चर्य से पूछा।

"हां, मैं अध्यापक हूं।"

दुकानदार का खिला चेहरा कुम्हलाए फूल की तरह मुरझा गया। प्रसन्नता की मुस्कान होठों से गायब हो गई। रूखी आवाज में बोला सीधे चले जाओ। आगे किसी को पूछ लेना। छाते के केवल साठ रुपया दे दो।" रुपये देकर गोपाल ज्यों ही आगे बढ़ा, सेठ के बड़बड़ाने की आवाज कानों से सुनी "मैं तो सेल टेक्स इन्सपेक्टर समझ गया था। ये तो मास्टर है, छाता मुफ्त में ले जाता।" सुनते ही गोपाल समझ गया कि छाता मुझे नहीं सेल टेक्स इन्सपेक्टर को मुफ्त में दिया जा रहा था। दुनिया चमत्कार को ही नमस्कार करती है।

राष्ट्रपति देश की सेवा करने वाले महान सपूतों को ही पुरस्कृत करते है। माली रूपी शिक्षक के त्याग से⋯पौधे⋯फलते हैं। इस गांव का सौभाग्य है कि गोपालजी जैसे शिक्षक मिले। इससे गांव और इस क्षेत्र का गौरव बढ़ा है।" इसी के साथ शिक्षा अधिकारी का भाषण समाप्त हुआ, तभी गांव के सरपंच मदन भाई मंच पर आए।

मदनजी के चेहरे से प्रौढ़ता झलक रही थी। सेठ गिरिधारी के बाद गांव के अन्तिम छोर पर यही तो मिला था। मेरे कहने पर वह रास्ता दिखाने के लिए आया था। जैसे ही उसे ज्ञात हुआ कि मैं अध्यापक हूं, वह उसी स्थान पर ठहर गया। वापस लौटते हुए कहा "इसी रास्ते चले जाओ। मैं तो समझा था कोई

पुलिस वाला या डॉक्टर साहब हैं। बरसात में बेकार भीगा।" रिमझिम बरसात और कीचड़ से भरे अनजान पथ पर गोपाल, उस नौजवान को देखता रहा। वह आदमी तेज कदमों से दूर जा रहा था। जीवन में पहली बार गांव देखा था और गांव के लोगों की मनोवृत्ति भी। थोड़ी देर बाद आगे बढ़ा। मन बार-बार सोच रहा था। मित्रों ने समझाया था कि पदोन्नति में क्या धरा है? वेतन में जो बढ़ोतरी होगी उससे तो ज्यादा खर्चा हो जाएगा। शहर की सुविधाओं से वंचित होना पड़ेगा और फिर गांव तो गांव ही होता है। उनका कहना ठीक ही तो था, लेकिन मेरा ही मन लालची बन बैठा। पिताजी की बात सुन भीष्म पितामह बनने आ गया। उफनते हुए नाले ने विचारों पर लगाम लगाई। दूर पहाड़ी पर मकानों को देखकर समझ गया कि वही चुड़ावाड़ा गांव होगा। नाले में पानी देख चिंता हुई कि नाला पार कैसे करना होगा? जीवन में पहली बार ये सब देख रहा हूं।

एक बार फिर मंच के नीचे नारे गूंज उठे। कुरा तो नारे के साथ भीड़ में कूद रहा था। वह इसी गांव का किसान था। उसी ने तो नाला पार कराया था। उसके बुलाने पर वह खेत से आया और नाला पार करा कर पूछा—"कँनो मोको देखवा जो हो साब।"

"मुझे किसी का मौका नहीं देखना, स्कूल जाना है।"

"मुनो पटवारी साब समझी ने आयो।"

अनपढ़ किसान ने मुंह पर सीधी थप्पड़ मारी। अनुभव हुआ कि समाज में शिक्षक की कोई इज्जत नहीं है। इसका दोषी कौन? शिक्षक या शिक्षा का अभाव। तभी खण्डहरनुमा बड़ा मकान आया। पास जाने पर मालूम हो गया कि यही स्कूल है। स्कूल में पहुंचा तो कबूतर इधर-उधर उड़ रहे थे। दोनों कमरों में पानी टपक रहा था। हवा के झोंकों से दरवाजे और खिड़कियों के किवाड़ हिल हिलकर आने वाले का स्वागत कर रहे थे या फिर चले जाने का संकेत दे रहे थे। स्कूल की हालत देख निराशा हुई। दूर एक झोंपड़ी से आदमी आया, उसके तन पर मात्र अधोवस्त्र था। इस स्कूल का वही मालिक था। अपना परिचय दिया तो वह अपनी झोंपड़ी पर ले गया। पूछने पर चपरासी ने बताया "तीन सौ घरों की बस्ती है। सभी खेतीहर, कोई भी आदमी बच्चों को पढ़ाने में रुचि नहीं लेता। स्कूल में केवल पचास लड़के पढ़ने आते हैं।" स्कूल के स्टॉफ के बारे में पूछा तो डरता हुआ बोला "साब, खास बात तो ये है कि कोई पढ़ना और पढ़ाना ही नहीं चाहता। मास्साब बराबर आते नहीं, आते भी हैं तो पढ़ाते नहीं। छुट्टी तो हमेशा जल्दी हो जाती है। कोई भी मास्साब इस गांव में नहीं रहते। किसी दिन तो मैं ही लड़कों को बैठा, रखता हूं।"

गोपाल को सारी स्थिति मालूम हो गई। उसने गांव के खास-खास व्यक्तियों

से सम्पर्क बढ़ाया। उसकी वाणी का प्रभाव गांव वालों पर पड़ा। छात्रों की संख्या सौ हो गई। स्वतन्त्र होने पर नामांकन में स्कूल प्रथम रहने से पुरस्कार मिला। पुरस्कार राशि से गांव वालों का उत्साह बढ़ा। गांव के बाहर समतल भूमि पर स्कूल के चार कमरे बना दिए गए। गोपालजी की गांव पर ऐसी पकड़ हो गई कि उनके बिना कोई काम ही नहीं हो सकता था। स्कूल के आसपास पेड़ लगा दिए गए। हर सत्र में नई योजना लागू होती। इस कारण खेलने का मैदान बना, स्कूल भूमि के चारों ओर बाड़ लगी, भवन का विस्तार हुआ, प्रौढ़ो में भी साक्षर हुए, खेती में सुधार आया और परिवार कल्याण कार्यक्रम भी लोग स्वेच्छा से अपनाने लगे। विद्यार्थियों का परिणाम गुणात्मक और संख्यात्मक दृष्टि से अच्छा रहने लगा। वृक्षों से स्कूल प्राचीन गुरुकुल की भांति शोभा देने लगा। इसमें शिक्षकों तथा गांव के लोगों ने भरपूर सहयोग दिया।

इन सात बरस में चुड़ावाड़ा की काया पलट गई। इसे देखने दूसरे गांवों के लोग आने लगे। जिले का आदर्श एवं प्रेरणादायक स्कूल बन गया। जिले के अधिकारी एवं बड़े अफसर देखने के लिए आने लगे। इससे गांव तक पक्की सड़क बन गई और बस आने लगी।

कलैक्टर साहब ने अपने भाषण में कहा, "जितने भी अधिकारी और सभ्य लोग हैं, सभी इन गुरुजनों की तराशी हुई मूर्तियां हैं। इनकी इज्जत करने से ही समाज और राष्ट्र आगे बढ़ सकता है।"

अन्त में गोपाल बोलने के लिए खड़े हुए "मुझे जो सम्मान आपने दिया है इसका श्रेय सहयोगी शिक्षकों एवं गांव वालों को है। इन्होंने मुझे स्नेह और सहयोग दिया। इस सम्मान में सेठ गिरिधारी, मदनजी तथा कुंरा किसान का भी सहयोग नहीं भुला सकता, जिन्होंने मेरे मन में कार्य करने का बीज अंकुरित किया। शिक्षक धन का नहीं प्रेम का भूखा है। वह बच्चों को मां-बाप का स्नेह देता है। आपने मुझे सम्मान दिया इसका मैं हृदय से आप सभी का आभारी हूं।" गद्‌गद् वाणी में कहते हुए आसन की तरह मुड़ गए। हवा पुनः नारों के स्वर से गूंज उठी। □

पंख : जिनसे कोई उड़ा था

रूपा पारीख

अभी-अभी मैं उनके घर से लौटा हूं, अपनी टीचर के घर से। मैं इसी शहर में पढ़ता था। बचपन... और बचपन...। चार साल रहा था यहां। आपने नहीं टटोला कभी अपने बचपन का खजाना? दस-ग्यारह वर्ष की उम्र का संग्रह कितना मनोहर होता है—सिगरेट और माचिस की डिब्बी के कागज, पुरानी राखियां, तरह-तरह के पत्थर, प्रिय खिलाड़ियों की तस्वीरें, टूटी चूड़ियां, शुभकामनाओं के कार्ड (जिन्हें बड़े लोग औपचारिकता में भेजते हैं लेकिन बच्चे सहेजते हैं) चॉकलेट लपेटने के रंगीन कागज, फ्यूज बल्ब और भी न जाने कितनी चीजें। मैं अब उतना छोटा नहीं हूं। चीजों का संग्रह—बच्चों की चीज है लेकिन बड़ों के लिए स्मृति का अम्बार। छोटे ढूंढ-ढूंढ कर सहेजते हैं शौक से—लेकिन बड़े लाद देते हैं चाहे-अनचाहे। बस इसी मामले में थोड़ा-सा खुशनसीब हूं—कुछ तो चुक गई हैं कुछ मैंने सजाई भी हैं—हां, स्मृति में !

देखिए बचपन की बातें कर रहा हूं शायद आपको अच्छा न लगे—आप बुदबुदा भी सकते हैं—बच्चू का बचपना गया नहीं अभी—काश ! बचपन जाता नहीं। मैं बचपन को जी नहीं रहा हूं बस कभी-कभी याद कर लेता हूं। शायद स्मृति में बचपन को जी सकूं।

मेरे संग्रह की प्रिय वस्तु थे पंख। मेरे किसी दोस्त के पास उतनी तरह के पंख नहीं थे जितने मेरे पास थे। एक दोस्त ने इकट्ठा करने शुरू किए थे मगर मेरे जितने इकट्ठे नहीं कर पाया था। मेरे पिता की तरह उसके पिता भी सेना में थे। लेकिन मेरे दादा की तरह उसके दादा का खेत नहीं था। उसके दादा गांव में नहीं रहते थे। मैं तो प्रायः हर छुट्टी में गांव जाता था और वहां से बहुत से पंख लाता था। मोर, मोरनी, कबूतर, तोता, कौआ, गौरैया के पंख तो थे ही—एक बार जब हमारे पडोस के खेत में एक कुत्ता मर गया था तब उस पर मंडराने वाले गिद्ध भी अपने पंख मेरे लिए छोड़ गए थे। तब मुझे यही लगता था—पर अब

जानता हूं कि कुछ पंख यूं ही झर गए थे। झरते पीले पत्तों की तरह —पंखों
पतझर आता है— मनुष्य का भी पतझर होता है—हर साल की पतझर ऋतु
अलग तरह का पतझर—जो किसी के लिए ऐन वसंत के समय भी आ सक
है।

पंख बहुत इकट्ठे कर लिए थे मैंने। और दादाजी से छुपाकर रखता
दादाजी को भी पसन्द नहीं थे पंख। लेकिन मैं उन्हें बहुत अच्छा लगता था—
बस। उन्होंने कभी एतराज नहीं किया। बल्कि उन्होंने ही सुझाया था कि प
को टीन की पेटी में ढेर सारे नीम के पत्तों के साथ रखो।

पिताजी का तबादला हर दो-तीन साल में हो जाता था। हम उनके
चले जाते थे। इस शहर में जब हम आए थे, मैं सात साल का था। यह
दादाजी के गांव के पास पड़ता है—बारह मील का फासला। मैं इसे अक्सर
घण्टे का फासला कहा करता था। फासला दूरी का होता है या समय का
जाने। आप जानते हैं? जब मैं नौ साल का हुआ तब पिताजी का तबादला
शहर में हो गया जो हमारे गांव से बहुत दूर था—जम्मू-काश्मीर। मैंने बहु
बहुत बातें सुन रखी थीं। मैं रोया भी था कि पिताजी हमें भी तो ले च
लेकिन पिताजी मुझे नहीं ले गए। मैं मां के साथ इसी शहर में रह गया—औ
साल रहने के लिए। नहीं तो दादाजी-दादीजी अकेले रह जाते।

उन्हीं दिनों मैंने सोचना शुरू किया था। समय कुछ यूं बीता था कि मैं
याद रख सकूं। सजा सकूं पंखों की तरह। वे पंख—जिनके सहारे पंछी उड़े
पिताजी मुझे दुलारकर चले गए। समझा कर गए कि एक फौजी की जि
क्या होती है। मुझे उस समय समझ में भी आ गया था। उसका कारण व
में मेरी समझ थी या मेरे प्रति प्यार? इसका निर्णय मुझसे नहीं हुआ। मैंने च
चाहा भी नहीं। एक और बात मेरे दिमाग में बिना बुलाए मेहमान की तर
बैठी—"मां अच्छी नहीं है।" और इसी के साथ आया अपराध बोध—मैं
क्यों सोचता हूं? शायद मैं ही अच्छा नहीं।

पिताजी चले गए। मां पर जिम्मेदारी आ गयी। मैं उनका इकलौता
हूं। इकलौता होना भी कितना यातनापूर्ण। सबकी आशा-आकांक्षाओं का
ढोओ। भार—जिसके नीचे 'मैं कुछ हूं' का बोध दब जाता है। यह 'मैं'
वाला 'मैं' नहीं—"मैं" यानि कि मेरी स्वतन्त्रता। मैं 'मैं' नहीं—किस
बेटा हूं, किसी का पोता, और हां होने-से कहता हूं किसी का शिष्य। जिसे ज
बाद होने-से कहने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। फिर भी बताता हूं—
सुन रही होंगी तो उन्हें अच्छा नहीं लगेगा क्योंकि उन्होंने कभी अपना गुरुत्व
थोपा। हां! वे मेरी गुरु।

मां उन दिनों बौखलाई-सी रहती थीं। नौकर-चाकर, घर की जिम्मे

शादी के बारे, दादा की बीमारी, बैंक का हिसाब-किताब, मेरी पढ़ाई का ध्यान
सब उन्हें करना होता था और फिर मैं। मैं तो उनके लिए सबसे बड़ी चुनौती था
—इकलौता बेटा। पिता की अनुपस्थिति में यदि मेरा परीक्षा-परिणाम अच्छा
नहीं हुआ तो बुआ, चाचा, पड़ोसी, ताई, ताई के बच्चे सब मां को खरी-खरी
सुनाएंगे और इस सारी आशंका का बोझ ढोना पड़ा मुझे। बाद में मैं जान गया
हूं—आशंका का बोझ है - मुझे तब नहीं मालूम था और मैंने समझ लिया कि मां
अच्छी नहीं है।

श्याम पढ़ो बेटे —होमवर्क करे बिना घर से बाहर मत जाना। निम्मी के
अच्छे अंक आएंगे तभी पतंग मिलेगी— और भी न जाने कितने तर्कों से मेरे गुस्से
को कुचलने के लिए मैंने भी मोर्चा संभाल लिया —खूब नहीं पढ़ूंगा- मां कहेंगी,
तब नहीं पढ़ूंगा - धूप में खेलूंगा—बैजनाथ अंकल के बच्चे अच्छे हैं तो होने दें, मैं
तो माली बाबा के लड़के के साथ खेलूंगा—गिल्ली डण्डा। अच्छे बच्चे नहीं खेलते
तो न सही — मैं भी अच्छा नहीं हूं।

परिणाम सामने था 'पांचवीं' कक्षा में मुझे बस उतने ही अंक मिले जितने
छठी कक्षा में पहुंचने के लिए जरूरी थे। मिशनरी स्कूलों में केवल पास होने वाले
बच्चों पर तो सब लोग तरस खाते ही हैं, लेकिन उस बच्चे के अभिभावकों को और
भी बड़ी सजा भुगतनी होती है। मां लगभग रो पड़ी थी। मैं बहुत खुश हुआ
था। छुट्टियों में पिताजी आए। मेरे लिए टीचर की बात हुई और तब वे आई
थी। अब भी इसी शहर में रहती हैं। तब इक्कीस साल की रही होंगी। मुझे
बताया गया था वे एम०ए० में पढ़ती हैं। मैंने जी०के० की किताब में पढ़ा था—
एम० ए० यानि मास्टर ऑव आर्ट्स। सच पूछो तो वे मुझे टीचर जैसी लगी ही
नहीं। उन्होंने मुझे कभी सजा दी नहीं। खैर, यह सब बातें बाद में।

पिताजी ने उन छुट्टियों में मुझे खूब घुमाया। बहुत अच्छी किताबें खरीद
कर दीं—परियों की कहानियां, कॉमिक्स, खिलौने की जीप, टैंक, हवाई जहाज
और भी बहुत सी चीजें —लेकिन पतंग नहीं दिलवाई मां ने मना कर दिया था।
उन्हीं छुट्टियों में माली के लड़के से मेरी दोस्ती टूट गई थी। वह गिल्ली-डण्डा
बनाना जानता था। पेड़ पर चढ़कर झूला भी बांध देता था। लेकिन नहीं—वह
अच्छा नहीं था। बीड़ी पीता था वह। उसने मुझसे गिल्ली-डण्डा के बदले पैसे
लिये थे। मैंने चोरी की थी। हालांकि उन चार रुपयों से मां के हिसाब में कोई
फर्क नहीं पड़ना था। वह गालियां देता था। मैंने उससे कहा भी था—"गाली
क्यों देते हो?" उसने अपने दोस्तों के बीच मेरा मजाक बनाया था—"लौंडा
बोलने लगा है साऽला।" बस फिर मैं नहीं गया उसके साथ।

पिताजी के जाने के दिन मां उदास हो गई थीं। पिताजी ने उन्हें कन्धे से
लगाकर कहा था—"मेरी चिन्ता मत किया करो। तुम्हारी हिम्मत है कि सब

.... था। मां थोड़ी देर के लिए बहुत सुन्दर लगी लेकिन तुरन्त ही
होंने मेरी ओर इशारा करके कहा—"इसके लिए मन दु:खी होता है।"
"हमारा बेटा बहुत अच्छा है, नीलू। सब ठीक हो जाएगा।"
मां रसोई मे चली गई थी।
मैंने पूछा, "पिताजी आप अब कब आएंगे ?"
"बेटे पिताजी हमेशा साथ नही रहते। अच्छे दोस्त बनाओ, बहादुर बनो।"
"अच्छे दोस्त कैसे होते हैं ?"
"जिनसे तुम मन की बात कह सको।"
उन्होंने मेरे सिर पर हाथ नहीं फेरा था। स्टेशन पर भी मुझसे हाथ मिला
गाड़ी में चढ़े।
"बेटे तुम बड़े हो रहे हो।"
मैं दस साल का था—पिताजीने मुझे बड़ा होने को कह दिया। मैं तब शायद
भी होता, मगर पिताजी की बात तो रखनी ही थी। मैं बड़ा होने लगा।
ब भी यह समझ मे नही आया था कि मेरी पतंग उड़ाने की इच्छा क्यो
? फिर मैंने मामा को पतंग उड़ाते देखा और समझ गया कि पतंग उड़ाने
छा का बड़े हो जाने से कोई सम्बन्ध नही है।
कूल खुल गए थे। मेरे लिए टीचर की खोज शुरू हो गई जो मुझे घर आ
ा सके। एक टीचर आने लगे। उन्हें खास हिदायत थी कि पाठ याद न
र मुझे खूब सजा दी जाय। मैं दो-दो घंटे तक पाठ लिख-लिखकर दोहराता
मेरे टीचर पैर पर पैर धरे ऊंघते रहते। नौकर उन्हें चाय दे जाता। मैं
कर लेता पर उन्हें सुनाने की इच्छा नही होती। पढ़ाई की मेज पर बैठे-
ड़की के छज्जे पर झूलती चमेली की बेल देखा करता। चिड़िया चह-
ई उस पर फुदकती और मुझे टीन की पेटी में रखे पतंग याद आ जाते।
न के सहारे कोई-न-कोई उड़ चुका है।
छुट्टियों मे गांव नही गया था और पतंगों से प्रेम भी कुछ कम पड़ गया
न जब से वे टीचर आने लगे मुझे पतंग फिर बहुत अच्छे लगने लगे थे।
हे, किसी को दिखाता नही था। जब मां बाजार जाती या किसी काम
ी तब उन्हें निकालकर देखता था और हर बार नए सिरे से मजा लेता

लिमाही हुई। मेरे नंबर अच्छे नहीं थे। उस दिन शाम को टीचर ने
त लगाए। मुझे वे उतने बुरे नही लगे थे। मैं दर्द से भर गया कि
मारने-पीटने की भी आ गई। शायद मां भी मारे। इस तरह मैं उन्हें
ह का सन्तोष हुआ। उनकी मार खाकर। मां ने टीचर को कमरे में
तें बात की। वे चले गए। उस रात मां ने खाना नही खाया। मुझे

गुस्से में देता और रोती रही। दूसरे दिन से टीचर ने आना बन्द कर दिया।
कुछ दिन पढ़ने गया। मुझे मां के रोने से डर लगता था। मां के रोने ने ही
मुश्किल में डाल दिया था। मैं पढ़ता तो था, पर मां जो ही पढ़ा दो क
किताबें फेंक देने का मन होता - क्यों पढ़ूं? मां को खुश करने के लिए?
इसलिए नहीं पढ़ता था। पिताजी ने कहा था बड़े हो रहे हो—अब पढ़ना
पड़ेगा था। मां चुप जब भी मुझे पढ़ता देखकर मुस्कराती तो मुझे गुस्सा आ जाता
है। मैं सोचता था, पर कुछ कहता नहीं। उनके हाथ में कुछ नहीं आता था—
इतना ही मेरे मन में था।

कुछ दिन बाद, एक दिन, जब मैं स्कूल से लौटा, बैठक में मामा बैठे थे।
उनके साथ एक लड़की भी थी। वे मुझे लड़की ही लगी थीं तब। "ये तुम्हारी
टीचर हैं" मां ने कहा था।

मैंने उन्हें देखा वे मुझे अच्छी लगी थीं। पर "टीचर हैं"—सुनते ही मेरा
उधर देखने का मन नहीं हुआ। मैंने धीरे से मामा से पूछा —"ये कौन से स्कूल में
पढ़ाती हैं।"

"ये पढ़ाती नहीं हैं। एम० ए० में पढ़ रही हैं।"

मुझे अच्छा लगा था। यही ठीक है। यही होना चाहिए— ये टीचर हैं ही
नहीं। मैंने मन-ही-मन नारेबन्दी शुरू कर दी। दूसरे दिन वे आई थीं, शाम के
समय। मैं उनका इन्तजार कर रहा था। कुछ भी हो उन्हें देखना तो मुझे अच्छा
लगता ही था। यही खेद था कि वे मेरी टीचर हैं।

वे आई थीं। मैंने नमस्ते नहीं की। मन ही नहीं हुआ। उन्होंने पूछा, "कौन-कौन से पाठ पढ़ चुके हो?"

मैंने हर किताब के पाठ बता दिए फिर यह भी जोड़ दिया—"पर मुझे कुछ नहीं आता।" आप सोच रहे होंगे मुझे इतना सब कुछ इतना सही और नपा-तुला कैसे याद है? पर नहीं। इसमें से बहुत-सी बातें मुझे अड़तीस साल की महिला ने बताई हैं, जो तब इक्कीस साल की थी। जी हां वे मेरी टीचर हैं। मैं उन्हीं से मिलकर आया हू, अभी कुछ देर पहले। उनसे मिलने गया ही इसलिए था कि जितना मैंने स्मृति में सजा रखा है उसे तरतीब दे सकू। किस तरह सुना रही थीं वे एक-एक बात—"तुम्हें याद है श्याम! जब पहली बार तुम्हें पढ़ाया था···ना! तुम्हें कहां याद होगा—दस साल के तो थे ही तुम।" मेरा मन हुआ था कहूं—"मुझे याद है एक-एक बात—यह भी कि आपने मुझे सिर्फ एक थप्पड़ मारा था। इतनी कंजूसी क्यों की?"—पर कहा इतना ही—"उन दिनों की बात कीजिए न मुझे अच्छा लगता है।" और फिर वे बोलती गई थीं। बीच-बीच में फिर वही, "तुम्हें याद है? ना? तुम्हें कहा याद होगा तुम बहुत छोटे थे।"

पहले ही दिन मुझे लगा था ये मेरी अच्छी दोस्त हो सकती हैं। मेरे यह कहने

पर कि—"मुझे कुछ आता नहीं है।" उन्होंने कहा—"अच्छा ! तुम्हें कुछ नहीं आता फिर तो हाथ मिलाओ। मुझे भी कुछ नहीं आता।" फिर वे हंसती ही गईं—हंसती ही गईं—इतना कि मुझे गुस्सा आने लगा। मैं चमेली की बेल देखने लगा। चिड़िया फुदक रही थी। उन्होंने हंसना बन्द कर दिया और मेरे कान में कहा—"ऐ ! हम चिड़िया होते तो कितना अच्छा होता।" मुझे पक्का विश्वास हो गया कि वे टीचर नहीं हैं। वे जितने दिन पढ़ाने आईं—मैंने उन्हें नमस्ते नहीं की। कभी-कभी सामने पड़ने पर मां कहतीं, "टीचर को नमस्ते करो।" मैं नमस्ते करता। वे मुस्कुरा देतीं। मुझे शर्म आ जाती।

दूसरे दिन उन्होंने कहा था, "श्याम तुम बड़े होकर क्या बनोगे ?"

"फौज में जाऊंगा।"

"वाह ! पिताजी की तरह ?"

"हां !"

"पिताजी ने पढ़ाई करी थी क्या ?"

"हां ! पढ़े थे तभी तो अफसर बने।"

"अच्छा !"

फिर उन्होंने बहुत दुखी होकर कहा, "तब तो तुम्हें भी पढ़ना पड़ेगा। अब क्या करें ?"

मैं तुरन्त बोल पड़ा था, "तो क्या हुआ—पढ़ना तो चाहिये ही।"

वे मुस्करा दीं, "तब तो चलो, आज से ही पढ़ना शुरु कर देते हैं।"

मुझे पता भी नहीं चला और मैं खुद अपने ही जाल में फंस गया। वैसे मुझे पढ़ाई से कब इंकार था। यह तो मां को तंग करने का एक तरीका था। मैं खूब पढ़ने लगा। कभी-कभी ऐसा लगता था कि वे मुझे कम पढ़ाती हैं, और मैं ही उन्हें पढ़ाने लगा हूं। वे आंखें फाड़कर कहतीं, "अच्छा ! तुम्हारे स्कूल में यह सब बताते हैं ? मुझे तो कुछ मालूम ही नहीं। मुझे भी बताओ ना—बर्फीले प्रदेशों में लोग कैसे रहते हैं ? गाड़ी कैसे चलती है ? अच्छा—यह तो बताओ कि एडोल्फ हिटलर को किस नाम से जाना जाता है।" कभी कहतीं, "श्याम ये जग क्यों लग जाता है ?" मुझे याद आता है कि कभी-कभी मैं कह बैठता था, "आपको इतना भी नहीं आता ? आप एम० ए० में क्या पढ़ती हैं ?"

वे रोनी सूरत बनाकर कहतीं, "चलो मैं अब मन लगाकर पढ़ूंगी।"

मैं स्कूल में खूब मन लगाकर पढ़ता। कक्षा में ध्यान से सुनता ताकि घर पर उनको नयी-नयी बातें बता सकूं। और जब वे आश्चर्य से आंखें फैलाएं और उनका ऊपर का होंठ कुछ और उठ आए तो मैं उन्हें देखकर खुश होऊं। एक दिन मेरा

मन हुआ कि मां से कहूं, "जानती हैं आप, टीचर को मैं पढ़ाता हूं।" लेकिन मां कैसे कहूं ? उनसे तो मेरी लड़ाई है। मुझे कुछ पता नहीं चलता कि वे किस मुझे खूब बनाती हैं ? वे मुझे रोज पढ़ाती थीं और उनके जाने के बाद भी मैं सब पढ़ता। वे मुझे अपनी प्रतिद्वंद्वी लगती थीं, यही लगता कि उनसे ज्यादा मुझे आना चाहिए। मुझे यह भी याद नहीं रहता कि मां को तंग करना है। मां मुझे कहने लगी थी।

अभी थोड़ी देर पहले ही तो मैं उनके सामने बैठा था, "तुम्हें याद है श्याम, एक बार तुम्हें शाम को मेरे जाने के बाद बुखार हो गया था। तुमने फोन उठा इनक्वायरी में पूछा था, "हमारे यहां जो टीचर आती हैं, क्या उनका फोन नम्बर है आपके पास ?" और तुम्हारी मां ने तुम्हें थपक-थपककर सुला दिया था नहीं, तुम्हें कहां याद होगा ? तुम बहुत छोटे थे तब।"

मेरा मन हुआ था कि टोक दूं, "इतना छोटा नहीं था कि कुछ याद न रख सकूं, और भला कुछ याद न होता तो आना ही क्यों ? ग्यारह साल बाद मैं क्यों इस शहर में सिर्फ दो दिन के लिए जरूरी काम से आया हूं।" पर मैंने कुछ नहीं कहा उनके सामने क्योंकि उनसे कहने का कम देखने-सुनने का मन अधिक होता है। यह भी मन हुआ था कि पूछूं, "क्या आपको वह सब याद है जो मुझे याद रह गया ?" पर फिर वही संकोच। घटनाओं को मन-ही-मन उलट-पलट कर आनन्दित होता रहा।

उस दिन उनका जन्मदिन था। उन्होंने नये कपड़े पहने थे। मैं उन्हें लगातार देख रहा था। मैंने कहा, "आज पढ़ाई नहीं करेंगे।"

"धन्यवाद श्याम मेरा भी पढ़ने का मन नहीं है।" वे चमेली की बेल देखने लगी। वे भूल गयी थी कि मैं भी यहां हूं। मैं उन्हें देखता ही जा रहा था। खिड़की से हवा के झोंके आते, और उनका दुपट्टा उड़कर उनसे ही लिपट जाता। हां ! मुझे याद है—हमारी मेज पर ढलती धूप के टुकड़े पड़ रहे थे, रोशनी के कुछ झिलमिल गोले उनके चेहरे पर पड़ रहे थे। यह सब इस तरह मैं अब कह पा रहा हूं यह भाषा तब नहीं थी—लेकिन मुझे विश्वास है कि जरूर ढलते सूरज की—ठण्डी—चमकती—धूप, हवा के साथ मिलकर, चमेली की बेल से झरकर उनके चेहरे और कपड़ों पर पड़ रही थी। मैं उन्हें देख रहा था। वे न जाने कहां देख रही थी। हवा मे उड़ता दुपट्टा उन्हें तंग कर रहा था। उन्होंने दुपट्टे को लगभग इस अंदाज मे पीछे फेंका कि—ले अपनी शैतानी की सजा। लेकिन दुपट्टा उनके माथे पर ठहर गया। मुझे यह सब याद है या नहीं यह जानना उतना जरूरी नहीं है—लेकिन तब ऐसा ही हुआ था। उन्हे भी याद है कि मेरे जन्मदिन पर जब वे अपने सिर पर आये दुपट्टे को हटाने लगी थी तो मैंने उन्हें टोक दिया था, "नहीं ! नही !! ऐसे ही रहने दीजिए।" अभी थोड़ी देर पहले उन्होंने ही मुझे बताया है

कि तब उन्होंने हंसकर कहा था, "बच्चू, फौज में जाना है या कविता लिखनी है?" मैंने उन्हें यह तो बताया था कि सेना के लिए मेरा चयन हो गया है पर झिझक से उबर नहीं पाया था, वरना यह भी कहता, "कविता भी लिखता हूं।"

कुछ दिन बाद मेरी छमाही परीक्षा हो गयी। छुट्टियां हुईं और मैं मां के साथ कुछ दिनों के लिए पिताजी के पास चला गया। पिताजी अब भी कभी-कभी बताते हैं कि उन दिनों मैं जितने भी दिन वहां रहा हर वाक्य में कहता—हमारी टीचर होतीं तो यह होता—वे ऐसा करतीं—वे ऐसा कहतीं—वे ऐसी हैं—ऐसे बैठती हैं—ऐसे हंसती हैं-ऐसे चलती हैं—आपने तो ऐसी टीचर देखी भी नहीं होगी। आपको कुछ नहीं आता। टीचर होतीं तो सब ठीक हो जाता। किसी तरह छुट्टियां खत्म हुईं और मैं लौट आया। परीक्षा-परिणाम आया। मेरा कक्षा में चौथा स्थान था। मां बहुत खुश थीं। मुझे लगा उन्हें खुश होने की कोई जरूरत नहीं है। मां की खुशी पर मुझे खीझ होती। टीचर ने फिर एक बार मुझे बुद्धू बनाया, "श्याम मां कैसी होती है। ठीक उस समय जब हमारा खेलने का मन होता है। पढ़ने को कहती है, और हम पढ़ते हैं तो ऐसे खुश होती है, जैसे खुद पढ़ रही हो।" मुझे बहुत अच्छा लगा यह सब सुनना। यह मेरे मन की बात थी। पर उन्होंने आगे जोड़ा, "लेकिन मां नहीं होती तो घर नहीं होता। वे नहीं होतीं तो हमें कौन कहता कि स्कूल जाओ।"

मैं फिर जाल में फंस गया। टीचर फिर जीत गयीं। मैं मां को अच्छा मानने लगा—पर शायद उनसे अच्छा नहीं। मैंने एक बार अपनी नोटबुक में हर पन्ने पर उनका नाम लिखा था। उन्होंने मुझे डांटा, तो मैं उनसे नाराज हो गया। दो दिन तक मैं उनसे नहीं बोला। जब कमरे में कोई तीसरा आता तो हम दोनों पढ़ने-पढ़ाने का नाटक करते बाकी समय, "नाराज हो तो होते रहो।" का भाव लिए इधर-उधर ताकते रहते। उन्होंने ही मुझे मनाया आखिर। एक बार मैंने फिर शरारत की, इस बार एक पन्ने पर उनका और दूसरे पन्ने पर पिताजी का नाम लिखता गया। उन्होंने नोट-बुक देखी। उनका चेहरा अजीब हो गया। मैं घबरा गया। उनकी आंखों में पानी आ गया था। मैंने खुद माफी जबकि मैं जानता नहीं था कि गलती क्या है। उन्होंने कहा था, "तुम मुझे मुसीबत में डाल दोगे।"

मैं उन कापियों को गांव में दादीजी के पास रख आया था। जब स्कूल की पढ़ाई खत्म हो गयी और कॉलेज में जाने से पहले मैं गांव गया तो दादी ने उन्हें लौटाते हुए कहा था, मुन्ना! याद है जब तू छठे दर्जे में था तब ये नोट-बुक यहां रखवा गया था, और कह गया था कि जब बड़ा हो जाऊंगा तब लौटा देना।" नोट

तुम्हें नींद आ चुकी थी। मैंने उन्हें बाद में पत्र भेजा और ... मेरी स्मृति में सदा के लिए अंकित रहेगी। मैं सोचता इतने तुम्हें सब ... यह सब याद है? इन्हें ... याद होगा लेकिन कहेंगी नहीं।

चाहे कुछ भी हो यह सब याद करना उतना ही अच्छा लग रहा है, जितने ... मुझे अपने इकट्ठे किये हुए पंख लगते थे। जितनी ही बातें याद हो आतीं उन्हें ... मिलाकर।

वार्षिक परीक्षा के दिनों में बहुत गर्मी थी। लू चलती थी। तब तीन मंजिले— मैंने चतुराई से या मैंने ही संयोगवश ... अपनी पढ़ाई के लिए छत वाला कमरा ले लिया था। पढ़ाई के समय मां का कमरे में आना मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था। मुझे लगता कि मां की उपस्थिति में टीचर भी नकली टीचर हो जाती थीं। ऊपर वाला कमरा मिलने के बाद मां के चक्कर कम हो गये थे। मुझे अच्छा लगता था। हम टेबिल कुर्सी की बजाय कालीन पर बैठकर ही पढ़ने लगे। एक दिन मैंने हिम्मत करके उनकी गोद में सिर रख दिया। उन्होंने बुरा नहीं माना। फिर यह रोज का नियम हो गया। इतनी सारी बातों के बीच मां की बतायी एक बात याद आती है और मैंने उसको एक तरतीब दे दी है। हालांकि ठीक-ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता, पर सोचता हूं कुछ इसी तरह हुआ होगा। चलो मान लें ऐसा न भी हुआ हो, पर मुझे यह ठीक इसी तरह याद करना अच्छा लग रहा है, और आधी बात की तो उन्होंने अभी पुष्टि की थी। केशव भाई, मामा के लड़के, आये हुए थे। उन दिनों वे तीन दिन तक पढ़ाने नहीं आयी थीं। मैंने तीन दिन में उन्हें तीन चिट्ठियां लिखीं। पहले दिन की चिट्ठी की मुख्य बात थी, "आप क्यों नहीं आयीं? मुझसे नाराज हैं?" दूसरे दिन, "क्या आप बीमार हैं?" की आशंका से ग्रस्त होकर चिट्ठी लिखी गयी, और तीसरे दिन केवल एक पंक्ति, "आप आज नहीं आयीं तो मैं मर जाऊंगा।"

उन्होंने अब सत्रह साल बाद भी यह स्वीकार किया है। चौथे दिन उनके आते ही मैंने कमरे का दरवाजा बन्द किया और टेढ़े-मेढ़े फटे कागजों पर लिखी चिट्ठियां उन्हें थमा दीं। भाषा तो हिन्दी थी मगर लिपि अंग्रेजी। उन्होंने मुझे प्यार करना चाहा। मैंने उन्हें हल्के से धक्का देकर कहा, "मैं आपसे बात नहीं करता।" तभी मां आ गयी थीं, "आप नहीं आयीं तो इसने सारे घर को परेशान कर डाला, अपने मामा के लड़के को इतनी जोर से काट खाया है कि बस।" मां थोड़ी देर में चली गयीं।

"क्यों श्याम यह सब क्या है?"

"वह बहुत बुरा है। रोज कहता था तेरी टीचर नहीं आयीं। हंसती हैं तो

. . . . वह रात का सो रहा था तो मैंने उसे
'चखाया।" शायद उन्हें कुछ समझ नहीं आया कि मुझे गुस्सा क्यों आया।
द्र हूं उन्हें क्यों नहीं समझ आया होगा—बल्कि मैं ही नहीं समझ पाया
: बात-समझने की है ही कहां।

के कहने पर हम फिर बैठक वाले कमरे में पढ़ने लगे। वे सिर्फ, "श्याम,
रो।" के अलावा कोई बात नहीं करतीं। एक दिन उन्होंने कहा था,
अच्छे नम्बर नहीं आये तो मुझ डांट पड़ेगी।" मैं अपने लिए चाहे न भी
उन्हें डांट से बचाने के लिए तो मुझे पढ़ना ही था। मुझे याद है वार्षिक
: अंतिम पर्चे से पहले दिन उन्होंने मुझे एक थप्पड़ मारा था। दूसरे दिन
ले भी नहीं आयी कि मेरा पर्चा कैसा हुआ। पांच दिन बाद मैं मा के
ाजी के पास चला गया। वह शहर छूट गया। अब आया हू सत्रह साल

'मिलने से पहले उनके लिए सम्बोधन ढूंढ़ता रहा। लेकिन सिर्फ 'आप'
चल गया। हमने मिलकर उन सात-आठ महीनों की एक-एक बात याद
वह आखिरी दिन''' । उस दिन उन्होंने मेरे छोटे-से मन मे (मन यदि
रह छोटा होता हो तो) अनेक प्रश्न उगा दिए थे और थोड़ी-सी घृणा
ा गया था उन्हें निरन्तर याद करते हुए, उनकी दी हुई विचित्र भेंट
उस दिन की जिज्ञासा ही मुझे आज उन तक ले गयी थी शायद। मैंने
कह ही दिया था, "आपका थप्पड़ नहीं भूला हूं अब तक।" वे मेरे
पे प्रश्न को पहचान गयी थी। "बड़े काम की चीज याद रखी है। और
इस बारे में? नहीं तुम्हें कहां याद होगा'''।" और वे फिर सत्रह साल
यी, "तुम लोगों को जाना था। मैं तुमसे चिढ़ने लगी थी। तुम मुझे
गने लगे थे। बड़े ढेपू हो गये थे तुम आखिरी दिनों में।" वे हंस

ाा तुम अच्छे बच्चे नहीं बन पाओगे। जीवन को सम्पूर्ण जीने के
वह स्वभाव एक बाधा था। मैंने चुद चुपके से अपने कपड़ो पर
और एक थप्पड़ तुम्हारे गाल पर जड़ दिया— "तुम कुछ नहीं समझ
ल सहलाते हुए मुझे देखते रहे—रोये भी नहीं। मैं चली आयी।"
। मैं विदा लेने के लिए खड़ा हो गया। वे दरवाजे तक आयीं,
: रहने की बजाय किसी खूबसूरत जगह पर ठहरे रह जाना तो अच्छा
!"

झोंपड़ी का दीपक

शिवनारायण शर्मा

दीपावली का दिन था। रीना सुबह जल्दी ही उठ गई थी। नित्य-क्रियाओ से निवृत्त हो वह रसोई घर में जाकर चाय बनाने लगी।

थोड़ी ही देर बाद उसका पति डॉ० सत्येश भी जग उठा। शौचादि से निवृत्त हो वह 'ड्राइंगरूम' मे रखे सोफे पर जा बैठा।

तभी रीना चाय की ट्रे लिए हुए 'ड्राइंगरूम' मे दाखिल हुई।

"आज तुम बडी खुश नजर आ रही हो रीनू," सत्येश ने मुस्कराते हुए कहा।
"आपके साथ आज दीपावली का पहला त्यौहार जो मनाऊंगी," रीना ने चाय का कप सत्येश की ओर बढ़ाते हुए कहा।

कुछ रुककर रीना बोली, "मैं जल्दी खाना बना लेती हूं। खाना खाकर हम शॉपिंग के लिए बाजार चल देते हैं।

अटैची मे शल्य-चिकित्सा के औजार रखते हुए सत्येश ने कहा, "आज सायं-काल तुम्हें तुम्हारे पापा के यहां जाना है, कल उनका फोन जो आया था। आते समय अपने भाइयो के लिए मिठाइयां, कपड़े एवं आतिशबाजी की सामग्री लेते जाना। मुझे आज अत्यावश्यक कार्यवश बाहर जाना है।"

"आखिर जाना कहां है?" रीना ने नाराज होते हुए कहा।

"मेरी प्यारी रीनू, आज एक झोंपड़ी का दीपक कुछ बुझे हुए दीपकों को ज्योतिमय करने जा रहा है।" सत्येश ने चाय का खाली कप टी-टेबल पर रखते हुए दृढ़ निश्चय के साथ कहा।

"अरे वाह, कोई पहेलियां बुझाना आप से सीखे। सच-सच बताओ जी, कहां जा रहे हो?" रीना ने नाराजगी दिखाते हुए कहा।

"मेरी अच्छी रीनू, तुम मेरे अतीत को मत कुरेदो। तुम्हारे पिता ने अपनी पुत्री एक डॉक्टर को दी है, झोंपड़ी वाले सत्तू को नहीं।" सत्येश ने थोड़ा उत्तेजित होते हुए कहा।

उसके मस्तिष्क में अतीत की कई फिल्में रेंग गयी।

"अरे आप तो बिना किसी बात के क्रोधित हो उठे। मैं कुछ समझ न पायी।" रीना ने बड़ी शालीनता से कहा।

"तो फिर सुनो मेरे अतीत की कहानी," सत्येश ने कहा।

कुछ देर रुककर सत्येश बोला, "आज से ठीक बारह वर्ष पहले मैं कक्षा द का विद्यार्थी था। मेरा एक मित्र था अजय। अजय के पिता एक बड़े उद्योगप हैं। मैं पढ़ने में कक्षा में अव्वल था। पढ़ाई में दूसरा स्थान था अजय का। एक बा अजय बीमार हो गया था। एक महीने की लम्बी बीमारी के बाद वह स्वस्थ ह पाया। इस बार वह अपने स्तर को कैसे कायम रखेगा इसकी उसे बड़ी चिन्ता थी।

कुछ ही दिनों बाद अजय का जन्म-दिन आया। इस अवसर पर मैंने नोट्स की प्रतिलिपियां उपहार के रूप मे उसके पास भिजवाईं, यह नोट्स मैंने अध्याप जी के अतिरिक्त चार-चार संदर्भ पुस्तकों से तैयार किये थे।

इन नोट्स को पाकर अजय बड़ा खुश हुआ। उसे लगा कि वह इन्हें पढ़कर आसानी से अपना स्तर कायम रख सकेगा।

कुछ दिनों बाद आया दीपावली का त्यौहार। अजय का नीले संगमरमर से बना विशाल भवन रंग-बिरंगी कंदीलों एवं कलात्मक वस्तुओं से सजाया जा रहा था। उसके घर पर तरह-तरह की मिठाइयां बन रही थी।

सायंकाल होते ही अजय के पिता सेठ आनंद एक नौकर से बोले, "जाओ जुगनू, दीपक और कंदीले जला दो।"

"मैं भी एक झोंपड़ी पर प्यार का दीपक जला आऊं पिताजी", अजय ने अपने पिता सेठ आनंद प्रसाद से कहा।

"कौन-सी झोंपड़ी पर अजय," सेठजी ने आश्चर्य के साथ पूछा।

तभी अजय ने अपने प्रतिभाशाली मित्र की सारी राम कहानी सुनायी। जन्म-दिन के अवसर पर उसके द्वारा भेजे गये नोट्स के बारे मे भी उसने बताया।

यह जानकर की बचपन से ही मेरे सिर से पिताजी का साया उठ गया है, सेठ आनंद प्रसाद को गहरा दुख हुआ, उनके मन में मेरे प्रति ममता का झरना फूट पड़ा।

अपने पिताजी की इच्छानुसार दीपावली के दिन सायंकाल अजय मिठाई का डिब्बा, आतिशबाजी एवं मोमबत्तियां लेकर मेरी झोंपड़ी पर आया।

उस दिन अजय को अपने यहां आया देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ।

तभी उसने मिठाई का डिब्बा व अन्य सामग्री मुझे थमाते हुए मुझे अपनी बांहों में भर लिया। बड़े प्यार से उसके मुंह से निकल पड़ा, "भैया सत्येश, दीपावली मुबारक हो।"

"साथ ही तुम्हें भी," मेरे रुंधे कंठ से संक्षिप्त वाक्य निकला।

"आज यह झोंपड़ी धन्य हो गयी है मित्र, रेगिस्तान की रेत में गुलाब के दर्शन दुर्लभ ही हैं।" मैंने उसे चटाई पर बैठने का संकेत करते हुए कहा।

अजय मेरे मन की बात समझ गया। वह गम्भीर होकर बोला, "मित्र, दौलत से कोई अमीर-गरीब नहीं हुआ करता है। क्या प्रतिभा के क्षेत्र में तुम मुझसे धनी नहीं हो?"

मैंने प्रसंग बदलते हुए कहा, "आओ अजय भोजन करें।"

"आज तुम्हारे साथ भोजन अवश्य करूंगा," अजय ने कहा।

मेरी माता ने हम दोनों को खाना परोसा। अजय ने भी मेरे साथ कढ़ी-चावल का सादा भोजन बड़ी रुचि के साथ किया।

भोजन के बाद वह अपने पिताजी द्वारा दिया गया लिफाफा मुझे देकर चला गया। उसे विदा करके मैं अपनी झोंपड़ी पर लौटा।

इसके बाद मैंने लिफाफा खोला। पूरा पत्र पढ़कर मैं अवाक् रह गया। पत्र में सेठजी ने अजय के साथ पढ़ने का आग्रह किया था। मेरी पढ़ाई का सारा खर्चा भी उन्होंने देने के लिए लिखा था।

सेठजी का पत्र पढ़कर मुझे अंधेरे जीवन में प्रकाश की एक किरण दिखाई दी। मुझे मेरे सुनहरे सपने साकार होते नजर आये।

अगले दिन से मैं तथा अजय सेठजी की कोठी पर साथ-साथ पढ़ने लगे। हम साथ-साथ कॉलेज जाते और घर पर भी साथ-साथ पढ़ते। सेठजी अजय की तरह मुझे भी अपना पुत्र मानने लगे थे।

समय अपने अदृश्य पंखों से उड़ता गया। मैंने तथा अजय ने एम० बी० बी०-एस० की परीक्षा साथ-साथ उत्तीर्ण की।

इसी बीच विधाता की क्रूर लीला का चक्र चला। एक दिन दुर्भाग्य से मेरा मित्र अजय एक दुर्घटना में चल बसा। बुढ़ापे में इस वज्रपात से सेठजी को बड़ा धक्का लगा। मैं कुछ दिनों तक उनके साथ रहा ताकि उनका दुःख कुछ हल्का हो सके।

इसी बीच मेरी नियुक्ति चिकित्सक के पद पर हो चुकी थी। मैं तन-मन से रोगियों की सेवा करने लगा।

थोड़े से सफल चिकित्सक के रूप में मेरी प्रसिद्धि चारों ओर फैल चुकी थी।

एक बार मैंने सेठजी के सामने ऋण चुकाने की इच्छा जाहिर की। मेरी बात सुनकर वह बोले, "बेटा एक दीपक दूसरे दीपक को तब ही प्रज्ज्वलित कर सकता है जब वह स्वयं भी प्रज्वलित हो। मैंने एक झोंपड़ी के दीपक को जलाया है। आशा है इस दीपक से हजारों बुझते दीपकों को प्रकाश मिलेगा।"

कुछ देर रुककर सेठजी बोले, "ऋण चुकाने का अवसर दूंगा बेटा आवेश, चिन्ता न करो।"

नौकरी के तीन वर्ष पश्चात् तुम्हारे पिताजी ने अपनी भानजी के लिए मे
चयन किया। आखिर अब दोनों प्रणय सूत्र में बंध ही गये।

मुझे कल ही सेठजी का पत्र प्राप्त हुआ था। उनकी ओर से पचास कि
मीटर दूर देहात में अन्धों के लिए नेत्र चिकित्सा का शिविर लगाया जा रहा है।

उन्होंने इस शिविर में आंखों का ऑपरेशन करने हेतु मुझे मुख्य चिकित्
नियुक्त किया है।

"अब मैं चलूंगा रीना," यह कहते हुए सत्येश ने एक नज़र अपनी कलाई घ
पर डाली।

"तो इस पुण्य कार्य में मैं क्यों पीछे रहूंगी," रीना ने दृढ़ संकल्प के साथ कहा

सत्येश के लाख मना करने पर भी वह नहीं मानी। आनन-फानन में तैयार
होकर वह सत्येश के साथ चल पड़ी।

दोनों ठीक समय पर देहात में पहुंच गये। तीन दिन तक सत्येश ने सैंकड़ों
आंखों का ऑपरेशन किया। एक सप्ताह बाद जब आंखों की पट्टियां खोली गईं तो
यह जानकर अतीव प्रसन्नता हुई कि सभी ऑपरेशन सफल रहे। इस बीच रीना ने
रोगियों की खूब सेवा की थी।

अनेक अन्धों को सत्येश की सफल शल्य चिकित्सा से रंगीन दुनिया के दर्शन
हुए थे। सभी रोगियों ने सत्येश और रीना का हृदय से आभार प्रकट किया था।

इस अवसर पर सेठ आनद प्रसाद ने सत्येश और रीना को आशीर्वाद देते
हुए कहा, "आज एक झोपड़ी के दीपक ने अनेक बुझे हुए दीपकों को फिर से
प्रज्वलित किया है। मुझे आज असीम सुख की अनुभूति हो रही है। आज से बेटे
सत्येश तुम ऋण मुक्त हो। आशा है भविष्य में भी तुम इसी तरह दीन-दुखियों
की तन-मन से सेवा करते रहोगे।"

इस अवसर पर सत्येश की आंखो से गंगा-यमुना बह पड़ी। सत्येश तथा रीना
ने आगे बढ़कर एक बार पुनः सेठजी के चरण-स्पर्श किये।

कुछ ही देर बाद सत्येश की कार हवा से बातें करती हुई सड़क पर दौड़ी जा
रही थी। □

भाभी के प्रश्न

भरतसिंह ओला 'भरत'

न बादलों से ढका था। रह-रहकर वर्षा की बूंदें पृथ्वी को छू रही थीं। इतना सुहावना कि दिल और दिमाग ताजगी से भर उठे। कॉलेज से निकल घर की तरफ भागा। मन्द-मन्द मुस्काती बिजली और बादलों की सम्वेत लहरी आनन्द दे रही थी। साइकिल को बरामदे में रखकर खुशी से उछलते भाभी को पुकारना चाहा था। मगर भाभी के कमरे से आज फिर मन्द-सिसकियों की आवाज आ रही थी। मन भारी हो गया। यह सिसकियों का नहीं था। पिछले दस वर्षों से देख रहा था मैं। भाभी की सिसकियां जब कानों से टकराती तो आंखें सजल हो जाती। दर्द के कारण अपना ओठ पड़ता। हमेशा की तरह भाभी आज भी भाई साहब की तस्वीर के ही सुबक रही थी। भाभी के कमरे में भाई साहब की तस्वीर दरवाजे के ने लगी है। तस्वीर पर झूलती फूलों की माला भाई साहब के परलोक कहानी कहती है। भाभी को अपने बन्द कमरे में दरवाजे के पीछे आंसू पहली बार नहीं देखा था। जब मां, पिताजी, शीला और मैं घर से े तो भाभी घर में निहायत अकेली रह जाती, और घर की खामोश भी को चीख-चीखकर अपने अतीत की याद दिलाती। कितना प्यार ाई साहब भाभी को। कितने खुश थे एक-दूसरे को पाकर। भाभी की रात में घनघनाती पायल से कम न थी। मगर आज भाभी मुस्कराना है। हमें खुश रखने के लिए भाभी जब मुस्कराने की नाकाम कोशिश सिर्फ ओठों के बीच दांत दिखाकर रह जाते हैं। शादी के समय कितना था।

ी मां, बहू तो नाजुक फूल है। जरा-सी ठेस से कुम्हला जाएगा। रखियो।" शादी के समय सासमा मोटी ने कहा था।

ी। ठेस लगे बहू के दुश्मनों को। फूल को भी रखना जानता है मेरा

[illegible]।"

[illegible]

"नहीं हम भाभी के लिए [illegible] नहीं [illegible]।" [illegible] करतीं और भाभी को [illegible] शीला के [illegible]।

"बस शीला इससे और नहीं खाया जाता।"

"कैसे नहीं खाया जाएगा। जब तक [illegible] तुम्हारी भाभी को भी [illegible] पड़ेगा।" और शीला जबरन भाभी के मुंह में मिठाई ठूंस देती।

"बस भी करो शीला, अब पेट में बिल्कुल जगह नहीं है।" भाभी शीला के सामने हाथ जोड़ती।

"भैया हमारी भाभी का छोटा-सा पेट है तभी तो दुखती है। मनमा आंटी को देखो ना कितना बड़ा पेट है।" शीला मोटी मनमा आंटी की नकल करती तो हंसी रोक पाना कठिन होता।

"सो भई अब हम और अधिक अपनी भाभी को नहीं खिलाएंगे क्योंकि ज्यादा खाने से पेट बहुत बड़ा हो जाता है। मनमा भाभी को देखो ना, इन्हीं दिनों में कितना बड़ा पेट हो गया है।" शीला ने बचपन के भोलेपन से कहा तो भाभी के कपोल शर्म से लाल हो गए और पलकें अनायास ही झुक गईं।

"अरे धीरू ! तुम आज पिक्चर नहीं जा रहे हो क्या ?" पिताजी ने कहा।

"जी नहीं पिताजी।" भाई साहब ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

"अरे भई आखिर देश-भक्ति (देश-प्रेम) की पिक्चर है और फिर तुम्हारा तो आज पिक्चर जाने का प्रोग्राम था।"

"बात यह है पिताजी कि···"

"हम बताते हैं पिताजी।" शीला बीच में बोल पड़ी।

"तू क्या बताएगी। तू धीरू से ज्यादा जानती है क्या ?"

"सच पिताजी, मैं भैया से ज्यादा जानती हूं।"

"तो फिर तुम ही बताओ।"

"आज भाभी की तबीयत ठीक नहीं है, और जब भाभी की तबीयत ठीक नहीं है तो भैया की कैसे होगी।"

"नटखट कहीं की।" भाई साहब ने शीला को प्यार से चपत लगाते हुए कहा।

भाभी के आने से घर में एक नयी चमक आ गई थी। मां को भी काफी आराम हो गया था। घर के लगभग सभी काम भाभी सहर्ष किया करती थी। भाई साहब जब ऑफिस जाने को तैयार होते तो भाभी हमेशा पूछती, "कब तक लौट आओगे?"

"तुम भी खूब हो। ऑफिस जाने से पहले हर रोज यही प्रश्न करती हो। तुम्हे पता है ऑफिस से निकलने के बाद सिर्फ तुम्हारे पास आकर ही दम लेता हूं।" भाई साहब ने मुस्कराकर कहा।

"ऑफिस तो पांच बजे बन्द हो जाता है परन्तु आप तो 5-30 बजे आते हैं और कभी-कभी 6-00 बजे भी।" भाभी ने शिकायती लहजे में कहा।

"अच्छा मैडम आज से बन्दा जल्दी आने की कोशिश करेगा। अच्छा अब ऑफिस का समय हो रहा है।" कहकर भाई साहब ऑफिस चले जाते। घर में रह जाते मां, पिताजी और भाभी। घर का काम करके भाभी मा के पास बैठ जाती, और फिर मां और भाभी की बातें होती रहतीं।

"अरे बहू, सास की खातिरदारी करती रहोगी या हमें चाय-पानी दोगी।" पिताजी की आवाज से भाभी चौंकती।

"अरे! चार बज गए। देखो मां, मैं कितनी बातूनी हो गई हूं।"

"अरे नहीं बेटी, अगर तुम बात नहीं करोगी तो सारा दिन कैसे बीतेगा।" मां बड़े स्नेह से कहती।

भाभी ने चाय बनाकर एक-एक प्याला मां और पिताजी को दिया और फिर एक प्याला स्वयं लेकर मां के पास बैठ गई। मां बड़े स्नेह से भाभी को निहारती, और सोचती कितनी प्यारी बहू है, इतनी सेवा तो बेटी भी न करे। सुशिक्षित बहू को पाकर मां धन्य हो उठी। गृहस्थी की गाड़ी सुख के पहियों पर चल रही थी।

एक दिन भाभी ने मुझसे कहा, "विशु, तुम्हारे भाई साहब अभी तक घर नहीं आए। मां भी काफी परेशान है। तुम उनके ऑफिस या किसी दोस्त के यहां पता करके आओ ना।" भाभी ने मुझे कभी विश्वेन्द्र नहीं कहा था। भाभी मुझे विशु ही कहा करती। भाभी ने मुझे मां से अधिक प्यार दिया। शायद इसी कारण भाभी के प्रति मेरा आदर सम्मान मां के बराबर था।

भाभी के आदेश के साथ ही मैं तीर की तरह घर से निकला और भाई साहब के ऑफिस की ओर चल पड़ा। भाई साहब को बुलाने मैं जिस खुशी से उनके ऑफिस जा रहा था, मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि उससे भी अधिक दुख

के साथ मुझे [illegible] देखने का आनन्द [illegible] रहेगा। क्योंकि अब मेरे [illegible] कि
इन उग्रवादियों ने [illegible] प्रतिष्ठित करके अपनी कार्यवाहियों को [illegible]
दिया है। भाभी को [illegible] पहुंचाया जा चुका है। [illegible] जाने के बाद [illegible]
जाना कि तीन वर्षों का सिन्दूर छिन चुका था, और इन तीन वसन्तों में [illegible]
भाभी रोई थी।

मैं बहुत रोया था। पता नहीं किस [illegible]। भाभी के आंगन में फिर मुझे
मुस्कराता बसन्त नजर आता रहा। भाभी कोई बात नहीं मालूम करते, मगर मैंने देखा भाभी
की सीप सी लम्बी आंखें, गाहे-गाहे चमकता मुख, [illegible] में हाथिन के दांतों की तरह
हाथों की हरी हरी चूड़ियां सब गायब थीं। भाभी का उदास, मायूस, कांतिहीन
चेहरा देखते ही दिल धड़क उठा। यह भाभी जो मेरे जरा से उदास होने पर ढेर
सारा [illegible] किया करती, मुझे इतनी देर नहीं भाता करती, वही भाभी अब
गुम सुम सी थी। भाभी ने मेरे चेहरे को अपने आंचल में समेट रखा था। मगर एक
शब्द भी भाभी के मुंह से [illegible] मेरी रुलाई रोकने के लिए नहीं निकले।

रसोईघर में बर्तन गिरने की तेज आवाज ने मेरे विचारों की शृंखला को
तोड़ा। भाभी अब भी भाई साहब की तस्वीर के सामने खड़ी आंसू बहाए जा रही
थी। मेरी आंखें भी नम हो गयी। दिल ने चाहा कि गला फाड़कर रोऊं, परन्तु
परिस्थितियों ने मुझमें इतना साहस नहीं छोड़ा था कि गला फाड़कर रो सकूं।
मगर फिर भी मैं अपने-आपको रोक नहीं पाया। अधखुले दरवाजे को खोलकर
अन्दर गया तो भाभी बोली। आंसुओं से भीगे चेहरे को छुपाती हुई भाभी धीरे से
बोली, "विशू।"

मेरे धैर्य का बांध टूट गया। दस वर्ष पहले की तरह मैं भाभी के आंचल में
सिर छुपाकर फूट-फूटकर रोने लगा।

"विशू, क्या हो गया है तुम्हें आज?" मेरे चेहरे को प्यार से पुचकारते हुए
भाभी ने कंपकंपाती आवाज में कहा।

"नहीं-नहीं भाभी, मुझसे तुम्हारे यह शुष्क ओठ, उदास चेहरा, सफेद पोशाक
यह नरकीय जीवन, यह पीड़ा, ये सब मुझसे नहीं देखा जाता भाभी। भाभी तुम
कितनी प्यारी हंसी हंसती थी और आज तुम मुस्कराना ही भूल गई हो। मुस्कराओ
ना भाभी, मुस्कराओ।" मैंने रोते हुए भाभी से कहा।

"मुस्कराहट मेरी जिन्दगी से बहुत दूर चली गई है विशू, जो शायद लौटकर
मेरे पास कभी नहीं आ सकती, क्योंकि इस देश के भटके युवकों ने, खोखले होते
समाज ने मेरे मुस्कराने पर प्रतिबन्ध लगा दिया है।" दर्द भरी आवाज में भाभी
बोली।

"नहीं भाभी, राह से भटके युवकों से, खोखले होते समाज से डरो नहीं। तुम्हें

पहले की तरह मुस्कराना होगा, माथे पर बिन्दी लगानी होगी, मांग में सिन्दूर भरना होगा भाभी।"

"ये सब करने से क्या होगा विशू।" सुबह बिन्दिया लगेगी शाम तक नोच ली जाएगी। शाम को मांग में सिंदूर भरा जाएगा, सुबह होते-होते पोंछ दिया जाएगा। मैं नाटक की कलाकार तो नहीं हूं विशू, जो हर सुबह सुहागिन और हर शाम विधवा बनती रहूं। जब तक धर्म, जाति, भाषा, पृथकतावाद को लेकर ये जहर फैलता रहेगा, तब तक तुम्हारी भाभी की बिन्दिया, मांग का सिन्दूर मिटता रहेगा। अगर तुम मुझे फिर से सुहागिन देखना चाहते हो तो पहले अपने भीतर पनपने उस राक्षस को खत्म करो जो हर पल मेरे सुहाग को पोंछना चाहता है। धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रवाद की भावना को मिटाना होगा। देश में प्रेम व भाईचारे की ज्योत प्रज्वलित करनी होगी। दूसरों के दुख-दर्द को अपना दुख-दर्द समझना होगा, मानव से मानव को प्रेम करना होगा, तभी मेरे माथे की बिन्दिया और सिन्दूर स्थायी रह सकते हैं। क्या तुम ऐसा कर सकोगे विशू?"

"भाभी के प्रश्नों का जवाब मेरे पास नहीं है अगर आपके पास हो तो अवश्य देना, इन्तजार करूंगा।" □

मास्टरजी की होली

सुरेन्द्र मेहता

ज्यो ही मास्टरजी ने स्कूल जाने के लिए साइकिल बाहर निकाली त्यों ही गुड्डू दौड़ता हुआ आया और बोला, "पापा जल्दी आना।" और एक लम्बी सूची सामान की पकड़ा दी।

आज मास्टरजी बहुत खुश हैं। उन्हें अपनी ईमानदार लेखनी पर सरकार ने पुरस्कार देने की घोषणा की है, वह भी नकद। खुश क्यो नहीं हों? मास्टरजी ने युवकों को सही दिशा निर्देश दिया है। बड़ी ही निर्भीकता और साहस के साथ अपनी लेखनी को आतंकवाद के खिलाफ उतारा है। इसमें सत्य की गंध है, मानव चेतना का भाव है और इतिहास के झरोखे से यथार्थ का उद्बोधन है। वह अपना कार्य कितनी लगन व निष्ठा से करते हैं। मास्टरजी का विद्यार्थियों से कितने आत्मीय सम्बन्ध है। कौन कहता है कि अध्यापक का समाज में सम्मान नही है? कौन कहता है कि आज के युग में सत्य और ईमानदारी का महत्त्व नहीं है? कौन कहता है अध्यापन कार्य मे दोष है? सभी लोग तो मास्टरजी को सम्मान की दृष्टि से ही देखते हैं।

मास्टरजी की रोजाना भारी चलने वाली साइकिल भी हल्की होकर आज हवा मे बातें करने लगी है। विचारो मे खोए मास्टरजी स्कूल की तरफ बढ़ रहे हैं। "मुझे पुरस्कार मिलेगा...मैं अपनी बीमार मां का इलाज अच्छे डाक्टर से कराऊंगा ···अपने गुड्डू को उच्च शिक्षा दिलाऊंगा और देश का सुनागरिक बनाऊंगा··· कल होली है, गुड्डू की मा के लिए एक सुन्दर उपहार ले जाऊंगा··· घर पर मिठाइयां ले जाऊंगा···मित्रों को पार्टी पर बुलाऊंगा···मेरे पास भी अन्य अध्यापकों की तरह स्कूटर होगा···अपने टूटे-फूटे घर की मरम्मत कराऊंगा··· पर मैं सत्य और ईमानदारी का मार्ग कभी नहीं छोड़ूंगा···।"

न जाने कितनी सुखद, सुन्दर कल्पना के सागर मे खोरे मास्टरजी बढ़ते ही जा रहे थे। बच्चों के शोर से मास्टरजी का ध्यान भंग हुआ। स्कूल के मुख्य द्वार

र ही संस्था प्रधान और विद्यार्थियों ने बधाई के साथ मास्टरजी का स्वागत किया।

विद्यालय के आगन में मास्टरजी के सम्मान में एक छोटी-सी सभा आयोजित की गई। संस्था प्रधान ने कहा—

"···यह विद्यालय के लिए अत्यन्त सम्मान की बात है कि मास्टरजी को उच्च साहित्य लेखन के लिए सरकार व साहित्य अकादमी ने पुरस्कार देने की घोषणा की है। किसी भी विधा का साहित्य हो, वह तब तक अधूरा है जब तक वह मानवतावादी एवं शुभ दिशा संकेत करने वाला नहीं हो, जब तक किसी सामाजिक सत्य की प्रतिष्ठापना करने वाला नहीं हो और किसी सुन्दर की खोज का प्रयत्न उसमें नहीं हो। मास्टरजी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से इस देश का और मानवीय समस्याओं का श्रेष्ठतम चित्रण किया है। आप एक ऐसे ससारी हैं जो विवेक की शिला पर बैठ, लोक कल्याण की बासुरी पर मनमोहिनी राग गुंजा रहे हैं'''। मैं विद्यालय परिवार की तरफ से आपको हार्दिक बधाई व शुभ कामनाएं देता हूं।"

तालियों की गड़गड़ाहट में मास्टरजी उठे और बोलने लगे—

"···आप लोगों ने मुझे जो सम्मान व प्यार दिया है उसके लिए हार्दिक धन्यवाद। प्रिय नवयुवको! वर्तमान परिवेश में मानवता भटक रही है। भाई-भाई का दुश्मन हो रहा है। जाति और धर्म के नाम पर गदी राजनीति वाले धूर्त राक्षस आपको अपनी राहों से भटकाने पर तुले हैं। इनसे सावधान रहें। देश और मानवीय हितों को सर्वोपरि रखें। एकता और सगठन में ही शक्ति है और यही देश की भक्ति है। मैं आप सबका अन्तरात्मा से आभार प्रकट करते हुए होली की शुभकामनाएं देता हूं'''धन्यवाद'''।"

होली के त्यौहार के कारण सभी अध्यापकों को आज वेतन पहले ही दे दिया गया है। कल से विद्यालय बन्द रहेगा। मास्टरजी ने विद्यालय के कार्यों से निवृत्त हो, अपनी साइकिल उठाई और बाजार की तरफ निकल पड़े।

कुछ वर्षों पहले की तो बात है। होली के ही तो वे दिन थे। चन्दा कैसी नई-नवेली सुन्दर दुल्हन बनकर इस घर में आई थी। सीमित साधनों में भी किस प्रकार उसने मेरी घर-गृहस्थी को सुन्दर बनाकर रखा है। अभावों के घेरे में मैं तो कभी उसको कीमती उपहार भी नहीं दे सका। चन्दा का चेहरा धीरे-धीरे कब अपनी लालिमा खो चुका था। आखों के नीचे व आस-पास काली छाया ने तो मुझे डरा ही दिया था। एक दिन मेरे जिद करने पर उसने कितने सरल भाव से कहा था।

"ईमानदारी की रोटी और नेक पति सबमें बड़ा उपहार है मेरे लिए। मैं तो खाती-पीती स्वस्थ हूं। यह पैसा माताजी की दवाइयों पर खर्च करो। बूढ़े माइतो

की सेवा भी तो इन्सान करते है।"

अफसरों के नेता से कभी कभी मेरा [illegible] रहता है, लेकिन [illegible] की [illegible] हूँ। [illegible] जाता है। मैं [illegible] उनके लिए एक सुन्दर उपहार [illegible] मास्टरजी [illegible] कि आवाज आई।

"मास्टरजी बधाई हो, यहाँ आपकी रचनाओं ने भी शहर में [illegible] दिया है। आप तो एक महान लेखक हैं।"

"धन्यवाद यह सब आप लोगों की प्रेरणा व स्नेह का परिणाम है।"

"धर्मनिरपेक्षवादी देश के नाम पर कलंक" — आपकी इस रचना की जितनी भी प्रशंसा की जाए कम है। आइए ना मास्टरजी, मेरा घर निकट ही है। हमें भी आपके चरणों की धूल लेने का अवसर प्रदान करें।"

"नहीं भाई, आज मैं जल्दी में हूँ, फिर कभी आऊंगा।"

आज मास्टरजी जितना जल्दी घर आने की कोशिश कर रहे हैं, उतनी ही देर हो रही है। कभी सामान खरीदने में, तो कभी लोगों द्वारा घिर जाने से विलम्ब हो रहा है। सूर्य अस्ताचल की तरफ बढ़ रहा है। मास्टरजी अभी मिठाई की दुकान की तरफ बढ़ ही रहे थे कि आवाज आई, "मास्टरजी, लगता है शहर में गड़बड़ी होने वाली है। जरा संभल कर जाएँ। आतंकवादियों ने समाचार कार्यालयों और आकाशवाणी केन्द्र को उड़ाने की धमकी दी है।"

विधि की कैसी विडम्बना है। आज भाई भाई का दुश्मन बन बैठा है। जिन्होंने देश की संस्कृति और धर्म की रक्षा की शपथ खाई, जिन्होंने देश के स्वतन्त्रता संग्राम में कन्धे से कन्धा लगाकर लड़ाई लड़ी, वही आज देश के टुकड़े-टुकड़े करने पर आमादा है। हम स्वतन्त्र हैं, राजनैतिक दृष्टि से, पर हमें भावाई दृष्टि से और मानवीय दृष्टि से अभी स्वतन्त्र होना शेष है। हमें हजारों साल की गुलामी ने इतना निरीह बना दिया है कि हम सोच ही नहीं पाते कि हजार साल पहले यहां कोई सुसम्पन्न संस्कृति, कोई समृद्ध भाषा तथा आदर्श जीवन दर्शन भी था, जो विश्व को ज्ञान लोक देने में भी सक्षम था। जहाँ पहुंच अनजान क्षितिज को एक सहारा मिलता था। ऐसा था सुन्दर देश हमारा। आज धर्म, जाति और भाषाई झगड़ों ने पूरे देश की अस्मिता को झुका दिया है। यह वोटों की राजनीतिक चाल इस देश को कहां ले जाएगी। किस सीमा तक ओछाई, निम्न स्तरीयता तथा नीचता तक उतार देती है कि लोकतन्त्र पर प्रश्नवाचक चिह्न लग रहा है। वह अशोक महान और अकबर महान का भारत कहाँ है?

मास्टरजी ने शीघ्रता से कार्य निपटाकर घर की राह पकड़ी। लौटते समय साइकिल यकायक भारी चलने लगी। मास्टरजी साइकिल को निर्दोष करार देते हुए खुद-ब-खुद ही बड़बड़ाने लगे, अगर इसका सवार केवल इसका उपयोग ही

ता रहे तो सारा कन्ज तक मिलेगा। उन्होंने तय कर लिया कि वह अब इस घटारे ो बेच देंगे। अब तो स्कूटर लेना ही है। एक स्कूटर की दुकान पर मास्टरजी भी रुके ही थे कि दुकानदार ने दुकान बन्द करते हुए कहा, "मास्टरजी जल्द र जाएं, शहर में कर्फ्यू लगने वाला है।"

मास्टरजी घबराये हुए घर की तरफ दौड़े। घर के बाहर भीड़ और पुलिस देखकर स्तब्ध रह गये। साइकिल को एक तरफ पटक कर भीड़ को चीरते हुए तर गये। उस डरावने दृश्य को देखकर उनके मुंह से चीख निकल गई···।

"हे राम···यह किस बात की सजा···?"

मास्टरजी की माताजी, पत्नी और पुत्र का शरीर गोलियों से छलनी हुए त-रंजित पड़े थे। मानो होली के लाल रंग से किसी ने उन्हें स्नान करा दिया ।

मास्टरजी ने देखा गुड्डू के हाथ में एक कागज का टुकड़ा है जिस पर लिखा —

"पापा जल्दी आओ।"

मास्टरजी की आंखों से आंसुओं की नदी बहने लगी। पुलिस ने भीड़ को टाना शुरू किया। लोग सान्त्वना व धैर्य बंधाते-बंधाते खिसकने लगे। लोग कह हे थे कि, "मास्टरजी को कई बार धमकियां मिली थी कि आतंकवाद पर नहीं खें।"

अंधेरे से ढका क्षितिज शहर के ऊपर रात की काली चादर फैला रहा था। हर में एक तरफ होली दहन की खुशियां मनाई जा रही थीं तो दूसरी तरफ मशान में लाशें जल रही थीं। मूक मुद्रा में खड़े लोग मां, पत्नी और पुत्र की लती चिता को देख आंसू बहा रहे थे। धुएं के वृत्ताकार स्तम्भ सीधे होते हुए ड़े आकाश में ऊपर उठ रहे थे।

न जाने यहां कितने निर्दोष इन्सानों की चिताएं और जलेंगी, और कब तक लती रहेंगी। मैं उदास मन को लिए श्मशान में ही बैठा हूं। चारों ओर भयावना न्धकार ही अन्धकार था। जब कोई नहीं बोलता है तो मैंने देखा, क्षितिज के रास्तों से परछाइयां आती हैं और बार-बार आती हैं और मुझे कहती हैं, "लेखक, ये खण्डहर कभी आबाद थे, फिर आबाद हो सकते हैं। निराशा के सागर मे कल, तुझे अभी लिखना है। उठ उस सोई हुई युवा चेतना को जगा। कहानी भी अधूरी···है। □

माटी की गुल्लक

हनुमान दीक्षित

वैसे हड़ताल होने की चर्चा तो अखबारों व साथियों में होती रहती थी। मगर रवि बाबू का विचार था कि इतनी जल्दी हड़ताल होगी नहीं। क्योंकि दो साल पहले हड़ताल हो चुकी थी। इसके साथ ही वह सोचता था कि महासंघ सरकार को चेतावनी दे रहा है, ताकि वह घबराकर संघ की मांगें मान ले। वैसे वह मांगों के खिलाफ नहीं था। मांगे पूरी होने पर, उसे भी कुछ हासिल होने की कल्पना से बदन में फुरफुरी छूटती थी। उसकी आंखों में बकाया एरियर से मिलने वाले पैसों से टी० वी० खरीदने का सपना साकार हुआ लगता था। इस मुई तनख्वाह से तो इस जन्म में टी० वी० खरीदने से रहा। कारण, वह तो पांच तारीख आते-आते गधे के सींग की तरह नौ दो ग्यारह हो जाती है। बाकी दिन उधारी में कटते हैं। उधारी + तकादा = रवि बाबू का समीकरण बन गया है। यह सोचकर उसके ओठों पर फीकी मुस्कान फैल गई।

उसका विचार सही नहीं निकला। कर्मचारियों की रैलियों, प्रदर्शनों, धरनों से सरकार नहीं झुकी। न दाएं-बाएं हुई। हड़ताल को तो होना ही था। सो हो गई।

अन्य कर्मचारियों के साथ उसे भी एक तारीख को वेतन मिल गया था। उधारियों को उधार चुका दी थी। राशन, दूध सब ठीक से मिल रहा था। जनवरी चल रही है। गणतन्त्र दिवस तक तो सरकार मान ही जायेगी। नहीं मानी तो गणतन्त्र दिवस का बहिष्कार हो जाने से सरकार की फजीहत होगी। अपनी फजीहत आदमी भी नहीं कराना चाहता। सरकार क्यों कराने लगी। यह सोच रवि बाबू बड़े जोश से प्रदर्शनों आदि में भाग ले रहा था। मगर उसका यह मुगालता भी जल्दी ही दूर हो गया। हड़ताल ने फरवरी को अपनी गिरफ्त में ले लिया।

रवि बाबू रोज की तरह आज भी परेड ग्राउण्ड में पहुंचा था। उससे पहले ही

सैकड़ो कर्मचारी वहां पहुंच चुके थे। आज प्रान्तीय नेता आए हुए थे। जोरदार तैयारियां थीं। एक तरफ आकाश को गुंजाने वाले नारे लग रहे थे, तो दूसरी तरफ पुतला तैयार किया जा रहा था। बैंड बाजे से जुलूस रवाना हुआ। बीच में अर्थी थी। छुटभैये मातमी नारों के साथ नाच रहे थे। परेड ग्राउण्ड में सभा हुई। नेताओं की धमाकेदार तकरीरें हुई। एकता व सहयोग की अपीलें हुई। इन सबसे भी सरकार के कान में जूं तक नहीं रेंगी।

रवि बाबू को लगने लगा था कि हड़ताल लम्बी खिचेगी। जनवरी का वेतन नहीं मिला था। घर में जरूरी चीजों का तोड़ा आ गया था। किरानेवाला भी सामान देने में ढील-हुज्जत करने लगा था। मकान मालिक, दूध व सब्जीवाला भी तकादा करने लगे थे। "साब, आपकी हड़ताल का क्या है जी, वह तो रबर की तरह से खिचती चली जाएगी। मगर हम गरीब लोगों का काम कैसे चले।" मकान मालिक की भद्दी शक्ल सुबह ही दिख गई थी। वह कह गया था कि या तो किराया दो, नहीं तो यहां से फूटो। आज पहली बार उसे हड़ताल डरावनी-सी लगी। बच्चे जो दिन भर धमा-चौकड़ी मचाये रखते थे—उसे खामोश नजर आए। पत्नी का चेहरा एक अजीब किस्म की उत्तेजना लिए हुए था। उसका दो कमरों का मकान पहली बार एक गहरा सन्नाटा झेल रहा था।

उस दिन तो उसके पास फूटी कौड़ी न थी। पत्नी ने भी सन्दूक, आलमारी की गिद्ध-दृष्टि से तलाशी ली तब कहीं जाकर एक कोने में मुड़ा-तुड़ा दस का एक नोट मिला। जिसे वह यह सोचकर जेब में डालकर चला था कि जुलूस के बाद आते समय सब्जी व साबुन ले आएगा। मगर जब वह परेड ग्राउण्ड पहुंचा, तो पता चला कि संघर्ष तेज करने के लिए नेता लोग संघर्ष-कोष इकट्ठा कर रहे हैं। सो आते समय उसकी जेब में चन्दे की रसीद थी। हाथ में खाली थैला था। यह देखकर सांझ को घर में वह महाभारत मचा कि दोनों महारथी भूखे ही सो गए।

जब उसकी आखें खुली तो सामने दीवार घड़ी में प्रातः के छ: बजे थे। उसने पास ही लेटी सुधा की ओर देखा। वह सो रही थी। दोनों बच्चे भी रजाई में दुबके हुए थे। उसने किसी को कुछ नहीं कहा। बेड-टी की तलब हो रही थी। मगर रात के घटना क्रम का स्मरण हो आने से आंखें बन्द किए पड़ा रहा। आखें बन्द करना तो उसके बस में था, मगर मन उसके बस में न था। उसका क्या, वह तो अपने विभाग में सामान्य क्लर्क है। बड़े-बड़े ज्ञानी-ध्यानी मन के आगे घुटने टेक जाते हैं। हड़ताल के औचित्य-अनौचित्य को लेकर उसके मन और मस्तिष्क में संघर्ष छिड़ गया। मन ने कहा—उसे हर माह कट-कटाकर तेरह सौ रुपये मिलते हैं। क्या यह कम है? फिर तुम कौन-सा पहाड़ फोड़ते हो। इन मजदूरों, दिहाड़ियों व निजी प्रतिष्ठानों में काम करने वालों को देख लिया होता। इन बेचारों को सुबह से सांझ तक खटने के बाद पन्द्रह-बीस रुपये मिलते हैं।

बुद्धि ने कहा—यह तो सरासर शोषण है, जिसे बन्द होना चाहिए। र
तेरह सौ रुपल्ली की बात। इस भयंकर महंगाई में कैसे पार पड़ना है? ये क
वाले क्या जाने। मांग भी कहां गलत है। जब केन्द्रीय कर्मचारी को बहुत कुछ मि
रहा है, तो राज्य कर्मचारी को भी तो मिलना चाहिए। काम जब एक, तो दा
भी एक ही मिलना चाहिए। महंगाई तो सबकी साझी शत्रु है।

मन ने फिर प्रश्न किया—जनता करों के बोझ-तले कराह रही है। अ
अकाल, दुकाल व तिकाल से पीड़ित है। ऐसी स्थिति में कर्मचारियों को सब्र से का
लेना चाहिए। अगर सारी मांगें मान ली जाएं तो राज्य का दिवाला पिट जाएगा
यह सब क्यूं नहीं सोचते नासपीटे कर्मचारी?

मन की फटकार सुनकर बुद्धि में भी उबाल आ गया—मगर ये सब सवाल
कर्मचारियों से ही क्यों किए जा रहे हैं। जबकि बड़े-बड़े राजनेता, जमींदार, सेठ
साहूकार अपना घर भर रहे हैं। राष्ट्रहित गौण हो गया है।

इस विचार मंथन में उसे पता ही नहीं चला कि कब पत्नी उठी। उसका
ध्यान तो तब टूटा जब वह चाय टेबल पर रखकर चली गई।

घड़ी में सुबह के आठ बज रहे थे। उसका जुलूस में जाने का मूड नहीं हो रहा
था। वह उठा। अपने साथी संजय शर्मा जो अंग्रेजी के व्याख्याता हैं, के घर की
तरफ रवाना हो गया। बाहर तेज ठण्डी हवा चल रही थी। शर्माजी के घर का
दरवाजा बन्द था। कमरे की खिड़की जरा-सी खुली थी। उसमें से हंसी-मजाक
व बातों की स्वर-लहरियां बाहर आ रही थीं। सुनकर वह ठिठक गया। उसे
आवाज पहचानने में देर नहीं लगी कि अन्दर कौन-कौन बैठे हैं। वाणिज्य के
व्याख्याता भजन राम मीणा, भौतिक शास्त्र के व्याख्याता रमजान अली, रसायन
शास्त्र के बी० जार्ज, मैथमैटिक्स के सी० आर० जाटव।

थोड़ी देर में ही रवि को पता चल गया कि इन सबका निर्णय है कि हड़ताल
का अच्छा अवसर हाथ लगा है। हड़ताल लम्बी चलेगी। बोर्ड की परीक्षा को दे
देर-सबेर होना ही है। स्कूल में कौन-सी पढ़ाई का दरिया बहना है। झक मारकर
इन सबको हमारे दरवाजे खटखटाने ही होंगे। किसी के अभी तक पांच बैच निक
रहे तो किसी के आठ। जो इनके हिसाब से कम ही हैं। योजना बनाकर तय
हुआ कि कम-से-कम बारह बैच, जिनमें एक बैच में दस छात्र हों, निकलने चाहिए।
इस प्रकार एक सौ बीस छात्र ट्यूशन पढ़ेंगे। प्रति छात्र दो सौ रुपए लिए जाने
चाहिए। इस प्रकार प्रति माह चौबीस हजार की आमदनी होगी। परीक्षा में अभी
अढ़ाई माह कम-से-कम हैं। पहले सैकेण्डरी-हायर सैकेण्डरी के होंगे। फिर यूनि
परीक्षा चलेगी। इस प्रकार पचास-साठ हजार की अतिरिक्त आमदनी होगी।
अच्छा मौका है, चांदी कूटनी चाहिए। इस प्रकार का गणित सुनकर रवि दंग रह
गया। उसे ध्यान आया कि ये ट्यूशनखोर कभी परेड ग्राउण्ड नहीं आते। सारो

प्रदर्शनों मे दूर, रुपये बटोरने मे लगे हैं। रवि की हिम्मत अन्दर जाने की नही हुई। बाहर से ही घर लौट आया।

सुधा ने हिम्मत रखने की बात कही। उसने भी रात की घटना पर दुःख प्रकट किया। भविष्य मे ऐसा दुबारा न होने का प्रण किया। हड़ताल का साया सिर पर था। मगर आपसी प्रेम लौट आया था।

रात के आठ बज रहे थे। वह खाना खाकर पान खाने की गर्ज से नुक्कड़ वाली पान की दुकान पर गया। वहा कुछ कर्मचारी भी खड़े थे। उनसे पता चला कि हड़ताल टूटने के कोई आसार नही है। आज वह परेड ग्राउण्ड भी नही गया था। इसलिए महासघ कार्यालय की ओर मुड गया। वहा जाकर पाया कि दफ्तर बन्द है। उसने सोचा कि आज शनिवार है। कल रविवार की छुट्टी है। प्रदर्शन आदि होना नही है। नेता लोग भी इस लम्बी हड़ताल व सघर्ष से कुछ आराम करना चाहते होंगे ताकि तरोताजा होकर सघर्ष को और तेज किया जा सके। वह लौटने को ही था कि दरवाजे की झीरी मे से उसे रोशनी दिखाई दी। यह सोचकर की कोई अन्दर जरूर होगा। वह दरवाजे के नजदीक चला गया। झीरी मे से झांककर देखा तो अन्दर का दृश्य देखकर वह अवाक् रह गया। सामने की कुर्सी पर संघर्ष समिति का सयोजक दयाशकर गुप्ता, अगल-बगल वाली कुर्सी पर सघर्ष समिति का उपाध्याय सुरेन्द्रसिंह गरचा तथा कोषाध्यक्ष हरीश पाण्डे बैठे हैं। दरवाजे की तरफ पीठ किये व्यक्ति को वह पहचान न सका। मेज पर रखी हुई थी बोतल। पास मे पकौड़ो से भरी प्लेट और थोड़ी दूर पर होटल से आया खाना रखा है। अचानक वह शख्स जिसे वह पहचान न सका था, बोलते ही पहचान मे आ गया कि वह कर्मचारी नेता गोविन्द ग्रेवाल है। वह कोषाध्यक्ष से पूछ रहा था, "सघर्ष कोष मे अभी तक कितना रुपया आया है ?"

"यही कोई बीस हजार।"

"और कितनीक उम्मीद है ?"

"बीसेक हजार और आ जाएंगे।"

"खर्चा कितना हो जाएगा ? समसम बोलो।"

"सयोजक बताएंगे।"

संयोजक कुछ उत्तर दे। उससे पहले ही गरचा बोल उठा, "अधिक से अधिक पन्द्रह-बीस हजार।"

"बाकी तीस-पैंतीस हजार का क्या करोगे ?" ग्रेवाल ने पूछा।

"करना धरना क्या है। आन्दोलन के बाद कौन पूछता है। सब अपने काम आएगें।" संयोजक का टका-सा जवाब था।

उत्तर सुनकर चारों हो-हो कर हसने लगे। यह सब देख-सुन रवि की जमीन पांवों तले से खिसक गई। जैसे-तैसे घर आया।

"सूरज कितना चढ़ आया है । उठते क्यूं नहीं । चाय रखी है। मी सी
फिर बाजार से चाय-चीनी लानी है ।" चाय टेबल पर रखते हुए सुधा एक
में सब कह गई ।

"परचूनिया ना-नुकर करता है। पैसे पास में नहीं हैं। उधार एक दो से
थे, जिन पर विश्वास था। वे भी मीठा जवाब दे, पल्ला झाड़ गए। कहां से ल
चाय-चीनी ।" उठता हुआ रवि बोला ।

उसकी आवाज सुनकर बच्चे सहम गए। शायद उन्हें उस दिन की बात-
में हुई लड़ाई याद आ गई। अचानक मीनाक्षी दूसरे कमरे में भागी गई और
कदमों से भागी हुई लौटी थी कि चौखट से टोकर लगते ही गिर पड़ी। उसके
से मिट्टी की गुल्लक गिरकर फूट गई। चन्द सिक्के फर्श पर बिखर गए। उ
हुए बोली, "पापा, पापा, इसमें मेरे बचत के पैसे हैं। चाय-चीनी ले आओ।"

रवि ने मीनाक्षी को गले से लगा लिया। उसने मीनाक्षी द्वारा लाया
टूटा गुल्लक हाथों में पकड़ रखा था और उसकी आंखों से अश्रु झर रहे थे। [

वध

गौरीशंकर आर्य

"आज से इस चौराहे से लेकर उस माध्यमिक विद्यालय तक का मार्ग, जहां स्वर्गीय पं० श्री आदित्य नारायणजी ने अध्यापन का परम पुनीत कार्य किया था, 'आदित्य मार्ग' कहलाएगा।" (तालियां) "आज उनके प्रातःस्मरणीय नाम पर इस मार्ग का नामकरण करते समय हमारा मस्तक श्रद्धा से नत है। भारतीय संस्कृति में गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश की समवेती 'त्रिमूर्ति' होते हैं। शिक्षक न सारे समाज को अपितु सारे देश को ज्ञान सम्पन्न बनाकर सुख-समृद्धि के पथ पर अग्रसर करता है। इसीलिए गुरु की वन्दना गोविन्द से भी पहले की गई है।" (तालियां) शिक्षा के माध्यम से समुचित ज्ञान देने वालों को ही ब्राह्मण माना गया है, जो हमारे अंगों में ज्ञानेन्द्रियों के रूप में विराजमान हैं। जब तक समाज इस ज्ञान-दानी ब्राह्मण अर्थात् गुरु का समुचित सम्मान नहीं करेगा वह कभी उन्नति नहीं कर सकेगा।" तालियों की गड़गड़ाहट के बीच शिक्षामंत्रीजी ने अपना भाषण समाप्त किया। कुछ लोग चौराहे के दाहिनी ओर सड़क के किनारे गड़े 'आदित्य मार्ग' के अक्षरों को प्रदर्शित करने वाले उस पत्थर को देखने लगे जिस पर भाषण से पूर्व मंत्रीजी ने पुष्पमाला अर्पित की थी और उसे प्रणाम किया था। कुछ व्यक्ति भाषण की भाषा और भावना की प्रशंसा कर रहे थे। महिलाओं के बीच बैठी स्वर्गीय प० आदित्य नारायण की विधवा पत्नी किरण देवी ने भी अपने पति के नाम का पत्थर देखा। उसे लगा—गले में माला पहने 'वह' ही मुस्करा कर रहे हैं—' मैंने कहा था न—आदर तो विद्या का ही होता है।" अपनी आखों में छलक आए आंसू पोंछकर वह उठ गईं। अब किरण देवी का सहारा उसका इकलौता पुत्र आलोक ही था जो अभी आठवीं कक्षा का छात्र था।

स्वर्गीय प० आदित्य नारायण सचमुच अच्छे अध्यापक थे। यों तो वह हिन्दी भाषा पढ़ाते थे, किन्तु अंग्रेजी और विशेषत संस्कृत भाषा में भी उनकी गहरी

रहे थी। उनके स्वभाव में पूरी सरल नहीं रहती, क्योंकि मोटी-मोटी और अन्य है अधिक विनम्र भी समाज में भली स्थान भी नहीं रहते हैं। पं. आदित्य शास्त्र वहाँ भी रहे पास जमीन बच्चों के बैठने के लिए टेबल-बेंचें, जो कहीं ढंग से न बनाए रखना। वहीं मकदीन से मरम्मत कर मेज का बैठक दिखाना, बड़ी अलमारी भी दिलाने में सहायक बनी। विज्ञान के लिए यंत्र प्रस्तुत किए। विद्या समय पर कक्षा में पहुँचना और पूरे समय पढ़ाते रहना उनकी आदत ही बन गई थी। अपने अंतिम समय में भी उन्होंने 'रिटायरमेंट' कार्यक्रम बनाया और उसे पालन कर दिखाया था। एक दिन उनके मकदूम प्रधानाचार्य ने बड़े सुझाव (प्रस्ताव) दिए और कहा "आप इसकी पूर्ति कर दीजिए। ईश्वर ने चाहा तो आपको राष्ट्रपतीय पुरस्कार मिल जाएगा।" आदित्यजी ने उत्तर देकर विनम्रता से कहा - "आप मुझे इस योग्य समझते, यही मेरे लिए पर्याप्त है।" फिर एक-दो क्षण मौन रहकर कुछ गम्भीरता से कहा, 'क्षमा कीजिए, मेरे जीवन की इस लम्बी सेवा में भी यदि विभाग की दृष्टि में कुछ नहीं है, और जो कुछ मैंने किया उस मैं ही लिखूं, और फिर उसे प्रमाणित कराऊं तो ऐसा लगेगा जैसे राम स्वयं रामचरितमानस पढ़कर श्रोताओं को सुना रहे हों। यदि विभाग के पास मेरे कार्यों का कोई लेखा-जोखा नहीं है तो मेरे द्वारा दिये गए विवरणों की सत्यता का आधार क्या आज के प्रमाण-पत्र रहेंगे?···मैं अपना काम निष्ठा से करता रहूं, ईश्वर मुझे यही शक्ति दे। बस मैं इसके अतिरिक्त कुछ नहीं चाहूंगा। इतना कहकर वह प्रधानाध्यापक को नमस्कार करके बाहर निकल गए। उन्होंने अपने घर बुलाकर कभी बच्चों को ट्यूशन नहीं पढ़ाया। वह कहते—"घर पर तो अध्यापक को स्वयं पढ़ना चाहिए। अध्यापक स्वयं नहीं पढ़ेगा तो वह पढ़ाएगा क्या! कुआं तभी स्वच्छ और शुद्ध जल दे सकता है जब जलस्रोतों से वह निरन्तर भरता रहे। यही कारण था कि उनके देवलोक-वास के पश्चात् घर की स्थिति सम्पन्न नहीं थी। जैसे-तैसे किरण देवी काम चला रही थीं।

स्वर्गीय आदित्यजी का 'पेंशन केस' विद्यालय से उच्च विभाग को भेजे 18 महीने हो गए थे। कभी कोई कमी रह जाती तो कभी किसी प्रमाण-पत्र की मांग आ जाती। कई बार भूल कहें या उदासीनता से पूरी फाइल अलमारी में ही दबी रह जाती। किरण देवी कई बार विद्यालय के दफ्तर में हो आई थीं किन्तु सब हाँ-हां कर देते और फूस की आग की भांति आंखें बन्द कर लेते। यदि आज कोई यक्ष धर्मराज से पूछता कि 'सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है?' तो वह कहते····"एक सेवारत अधिकारी यह भूल जाता है कि एक दिन उसको भी पेंशन होगी और उसे भी यही दिन देखना पड़ेगा।" विधवा असहाय किरण देवी अपने पुत्र को पढ़ाने और घर चलाने में क्या कष्ट भोग रही है, यह कभी कोई नहीं जान पाया। उनको अपने पति के द्वारा गुनगुनाया जाने वाला रहीम का दोहा बार-बार याद आता···

"रहिमन निज मन की विथा, मनहू न कहिए रोय। सुनि इठि लैहैं लोग स
बांटि सकें नहि कोय।" यों ही दिन और महीने बीत रहे थे।

संयोग ही था कि सरकार ने प्रतिभावान छात्र-छात्राओं के लिए छात्रवृ
प्रदान करने की घोषणा की। आलोक ने जी-जान से पढ़ाई की और कक्षा में ह
नहीं, पूरे विद्यालय के छात्रों में सबसे अधिक अंक प्राप्त कर उत्तीर्ण हुआ। छात्र
वृत्ति के लिए उसने भी प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किया किन्तु वह एक बड़े ठेकेदार क
लड़की को मिली। पूछने पर प्रधानाध्यापकजी ने उसे बताया कि अभी-अ
आए आदेश के अनुसार ये छात्रवृत्तियां निर्धन वर्ग के छात्रों के लिए ही हैं
आलोक ने नम्रता से कहा—"लेकिन सर, उस छात्रा के पिता तो सम्पत्ति से भ
अधिक हैं। विशाल भवन है, बड़ा बगीचा है, सैकड़ा बीघा कृषि भूमि है। ए
जीप और चार ट्रक हैं। लगभग 200 व्यक्ति उनके अधीन मजदूरी पर का
करते हैं, फिर उस छात्रा के अंक भी मुझसे बहुत कम हैं...इसके बाद भी य
कैसे? प्रधानाध्यापकजी ने बात काटते हुए कहा—"हां, यह सब ठीक है लेकि
वह निर्धन वर्ग के हैं। यह सुविधा उन्हीं के लिए है।" आलोक चुपचाप नमस्का
करके घर आ गया। किरण देवी ने सुना तो वह सोचने लगी—"गरीब औ
धनी की निरपेक्षता की दुहाई देने वाली सरकार क्यों ऐसी गरीबी पर ही कृपाल
है? फिर 'समानता के अधिकार' का क्या होगा? प्रतिभावान शब्द की सही
व्याख्या क्या यही है?" किन्तु उनके मन में उभरते-मरते इन प्रश्नों की ओर आं
उठाने वाला कोई वहां नहीं था।

आलोक ने भी साहस नहीं खोया। उसे पता चला कि एक राज्य अनुदान
प्राप्त मन्दिर पर चौकीदार का स्थान रिक्त है। उसने प्रबन्ध-कमेटी को प्रार्थना-प
भेज दिया। वह स्वीकार भी हो गया। मां को मालूम पड़ा तो वह बिलख उठी
किन्तु आलोक ने कहा—'मां, आप दोनों ही तो कहा करते थे कि काम छोटा य
बड़ा नहीं होता, अच्छा या बुरा होता है। मुझे रात को पढ़ने के लिए प्रकाश और
एकान्त मिल जायेगा। जो कुछ वेतन मिलेगा, उसमें से यदि कुछ बचा तो अगले
वर्ष पुस्तकें खरीद लूंगा। कुछ घंटे ही तो आपसे अलग रहूंगा।" किरण ने पुत्र की
बात सुनी। फिर जो पीड़ा उन्होंने बलात् कण्ठ में नीचे घूंट रखी थी वह छलक
आंखों की राह निकल पड़ी। उन्होंने आलोक को गले से लगा लिया।

नया सत्र आरम्भ हुआ। अबकी बार उसे नया अनुभव हुआ। उसके पिता
नहीं रहे थे अत: उसको शिक्षण शुल्क भी देना पड़ेगा। उसे आश्चर्य हुआ—पिता
जब तक जीवित रहे शिक्षण-शुल्क नहीं लगा। फिर अब तो विभागीय उदारता
अधिक होनी चाहिए। शायद महाविद्यालय के नियम अलग हों। अत: वह प्राचार्य
के पास गया और अपनी बात कही। "सर, राज्य कर्मचारी को वेतन मिलता है
तब उसके पुत्र-पुत्री का शिक्षण शुल्क नहीं लगता, परन्तु उसको पेंशन होने पर या

ये तुम्हें आलोक यह सुन्दर लिखा गया है वह तुलसी का ही है" [illegible] कहा। 'डाक्टर आलोक मैं तुलसी की कोई बराबरी नहीं कर सकता। मैं लिख[illegible] नहीं, उनका अनुकरण भर करता हूँ।' आलोक ने अपनी जम्हाई और [illegible] एक निश्वास छोड़ा, फिर नमस्कार करके कक्ष से बाहर आ गया।

अगली बार महाविद्यालय की साहित्य परिषद ने एक अनोखा निर्णय लि[illegible] परिषद के सदस्यों का तर्क था कि किसी साहित्यकार या कवि की जयन्ती स[illegible] समय प्रायः आमंत्रित वक्ता अथवा पंडित उपस्थित विद्वानों को भाते हैं, [illegible] कोई रचनात्मक कार्य या दिशा-बोध सामने नहीं आता। उन्होंने एक महावि[illegible] में मनाई गई रा० मैथिलीशरण गुप्त की जन्म शताब्दी का उदाहरण देकर [illegible] कि—भारत भर के आए विद्वान अपनी उत्कृष्ट परिमार्जित संस्कृतनिष्ठ भाषा [illegible] दुर्बोध प्रवचन करते रहे। वे सब स्मारिका की धरोहर और संग्रह योग्य हो [illegible] सकते हैं परन्तु किसी ने यह संकल्प नहीं लिया कि हिन्दी भाषा को जन-जन [illegible] सुगम बनाने के लिए वह आज से उतनी ही सरल भाषा में लिखेगा और बोले[illegible] जैसी भाषा का प्रयोग राष्ट्रकवि मैथिलीशरण किया करते थे। इसलिए अब महा[illegible] विद्यालय अपने ही स्तर पर महापुरुष या साहित्यकारों की जयन्ती मनाएगा जिसमें छात्र-छात्राएं ही अपने निबन्ध लिखेंगे। प्रथम आने वाले छात्र को एक हजार रुपए, द्वितीय को पांच सौ रुपए तथा तृतीय को एक सौ रुपयों का सांत्वना पुरस्कार दिया जाएगा। आलोक ने भी यह घोषणा सुनी और आगामी तुलसी जयन्ती के लिए तैयारी करने लगा। विषय था तुलसी का—'क्वचिदन्यतोऽपि'। परिषद ने तीन विद्वानों की निर्णायक कमेटी बनाई थी, परन्तु ठीक दो दिन पूर्व एक निर्णायक अस्वस्थ हो गए। उनका पत्र आ गया कि वह आ नहीं सकेंगे। ऐसी स्थिति में विवशता में यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया कि तीसरे निर्णायक इसी महाविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रोफ़ेसर रामजीलाल वर्मा को ही बना दिया जाए। प्रोफ़ेसर वर्मा ने दो-एक पल की ननुनच के बाद स्वीकार कर लिया।

प्रोफ़ेसर रामजीलाल वर्मा हिन्दी के अच्छे विद्वान थे किन्तु इसे विडम्बना ही कहा जाएगा कि उनकी एकमात्र लाडली बेटी अंग्रेजी की भक्त थी। प्रायः ऐसा विरोधाभास होता ही है। नलिनी अंग्रेजी फैशन के लिबास और वैसी ही चटक-मटक पसन्द करती थी। उसके 'स्टडी रूम' (अध्ययन कक्ष कहना उसको अच्छा नहीं लगेगा) में पॉप संगीत के कई कैसेट भरे पड़े थे। टेपरिकार्डर पर उनसे वह डांस किया करती थी। कॉलिज के कल्चरल-प्रोग्राम में उसका डिस्को डांस अवश्य ही होता था। स्वर्गीय पं० आदित्य नारायण कहा करते थे—"राजतंत्र की आलोचना करते-करते उसे उखाड़ फेंकने वाले समाज-सुधारक देश-सेवक उच्च पदासीन होकर उन्हीं राजा-महाराजाओं की भांति मंच पर विराजमान होकर

अपने मतदाताओं की युवा पुत्रियों के नृत्य और सौंदर्य का रस लेने को (सांस्कृतिक कार्यक्रम) आवश्यक मानते हैं। आश्चर्य तो यह है कि शिक्षा से विनय, शील और चरित्र की दिशा में बालकों को आगे बढ़ाने के उत्तरदायी शिक्षकगण ही ऐसे आयोजन करते हैं। इन सांस्कृतिक (?) कार्यक्रमों का परिणाम क्या होता है यह सब जानते हैं, फिर भी रस-लोलुपता के आगे सब नतमस्तक है, पराजित हैं। पहले लोग संस्कार की परिभाषा तो जान लें।"

प्रोफेसर वर्मा को अब की बार भी आशा नहीं थी कि इस दूसरी बार तो नलिनी हिन्दी में उत्तीर्णांक ले ही आएगी। नलिनी की रुचि हिन्दी में थी ही नहीं। इसलिए जैसे एक डॉक्टर स्वयं सफल चिकित्सक होकर भी अपने परिवार के सदस्य की चिकित्सा किसी दूसरे डॉक्टर से करवाता है। प्रोफेसर वर्मा ने एक सेवानिवृत्त अध्यापक पं० सुखदेव शर्मा को अपनी बेटी की हिन्दी की ट्यूशन पर लगा रखा था। पं० सुखदेव यथा नाम तथा काम थे। वह अध्यापक से अधिक कृषक और महाजन थे। सेवा-काल में विद्यालय से घर आते ही कपड़े बदलकर अपने खेतों पर चले जाते। धोती घुटनों तक चढ़ाए, छाती पर जेब वाली बनियान पहने इधर-उधर घूम-घूमकर 'हाली' और मजदूरों को डांटा फटकारा करते। वे अन्य गरीब लोगों को अधिक ब्याज की दर से रुपया उधार देते और फिर बरसों तक वे लोग उस ब्याज मात्र को चुकाने में उनके खेतों पर बेगार में काम किया करते थे।

पं० सुखदेव उसी स्थानीय माध्यमिक विद्यालय में नियुक्त हुए थे, जिसमें स्वर्गीय आदित्यनारायण सेवा से निवृत्त हुए थे। उन्होंने अपनी चतुराई से तबादलों के आदेशों में कभी अपना नाम नहीं जुड़ने दिया। जब कभी तबादलों का मौसम आता अथवा अधिकारी वर्ग निरीक्षण पर विद्यालय में आता, वह किसी-न-किसी प्रकार बात चलाकर उसी कस्बे का घी शुद्ध बताते, फिर बिना मांग के ही एक छोटी पीपी, साथ में कभी गेहूं की बोरी या गन्नों की भारी (बच्चों के लिए) स्वयं पहुंचा आते। सीधे साहब के घर में पहुंचकर मैडम को धरती पर सिर लगाकर प्रणाम करते और सामान सामने रख देते। साहब को बुलाकर मैडम कहती—"देखो, ये सामान पंडितजी लाए हैं।" साहब बटुआ खोलकर दाम पूछते, क्योंकि मुफ्त में उपहार या भेंट आदि लेना भी वे भ्रष्टाचार समझते थे। पं० सुखदेव बाजार भाव से मात्र चौथाई रकम बताकर (जिसे साहब और मैडम भी अच्छी तरह जानते थे) अंजली आगे बढ़ा देते। कहते—"आप उसूल के पाबंद हैं, क्या मैं नहीं जानता हूं, दाम आप जरूर देंगे। बस कुछ दिन पहले सस्ता खरीद लिया था, वही लाया हूं। अब आपसे नफा तो लिया नहीं जा सकता न।"

कुछ अपने मन की मुस्कान और बहुत कुछ सामने नतमस्तक बैठे मातहत की आग्रही सेवा-भावी भावना से अभिभूत साहब बहादुर रुपया देते और अनिच्छा

[illegible] प्रोफेसर साहब बन गये। पं० सुखदेव इस अवसर को [illegible]
[illegible] नहीं [illegible]।

[illegible] पहले से ही [illegible] और इसी [illegible] प्रोफेसर [illegible] के घर की [illegible] बातें [illegible] हुआ था कि [illegible] निबन्ध [illegible] प्रतियोगिता के निर्णायकों में से एक प्रोफेसर [illegible] भी हैं। पं० सुखदेव का पुत्र कौशल कुमार भी प्रतियोगी था। पं० सुखदेव ने [illegible] 'रामचरित मानस' [illegible]। वह जानते थे कि तुलसीदास ने राम के [illegible] नहीं [illegible] भैंस ने [illegible] में [illegible] की "कबहुँक अवसर पाइ" और काम बन गया था। वे देशी गुड़ की 'भेली', तथा सब्जी की एक थाली लिवाकर उस समय पहुँचे, जब प्रोफेसर साहब कॉलेज में थे। आते ही दरवाजे पर माथा टेका और दोनों चीजें मैडम (नलिनी की माता) के सामने रखकर बोले 'नलिनी बिटिया के लिए लाया हूँ। घर की है, कोई पैसा नहीं खरचा है। वह मेरी भी तो बेटी जैसी ही है।" मैडम मधु[illegible] ने देखा, आँखों में प्रसन्नता झलकी। मन मुस्कराया, परन्तु थोड़ा इनकार का अभिनय भी [illegible] अदा करी और पण्डितजी के आग्रह को टाल नहीं सकीं। [illegible] दिन बाद पण्डितजी [illegible] दूध का [illegible] लिए आए। मैडम के आगे धरा [illegible] बोले—"घर में आ गयी [illegible] भैंस है। यहां कोई पीता ही नहीं। सोचा [illegible] नलिनी बेटी के काम आयेगा, कुछ सेहत सुधर जाएगी, कमजोर लगती है तब तो पढ़ाई में पिछड़ जाती है।" माधुरी को दूध की तंगी अखर रही थी"मन [illegible] खुश हुई। फिर भी पूछा—"हां, दूध तो अच्छा है, परन्तु भाव क्या है?"

पंडितजी हाथ जोड़कर बोले, "अपने बच्चे-बच्ची को भी दूध बेचा जाता है क्या मेम साहब? यह तो बेटी के लिए है।"

निबन्ध प्रतियोगिता होने के दूसरे दिन देशी घी भी साथ में ले जाकर पं० सुखदेव ने हंसते हुए कहा, "आपका बच्चा कौशल, कौशल कुमार भी प्रतियोगिता में बैठा है। उसको आपका आशीर्वाद मिल जाय"···फिर सामने वाले को संभलने का अवसर दिए बिना एक बार पण्डितजी ने फिर कह दिया—"मैं तो कहता हूँ—वह भैंस यहीं लाकर बांध दूं, परन्तु यहां गन्दगी हो जायेगी · अच्छा यही है—मैं ही दूध लाया करूं।"

सध्या को पण्डित सुखदेव बढ़िया गाढ़ी छाछ और ताजा मक्खन लाये—(नलिनी बिटिया के लिए) और अपने बेटे का रोल नम्बर लिखा कागज मैडम को थमा दिया। उस शाम जब प्रोफेसर साहब क्लब से लौटे तो उन्हें माधुरी कुछ अधिक ही मधुर लगी। भोजनोपरान्त शयनकक्ष माधुरी की मधुरता से मुखरित हो गया—'अवसर पाइ' उसने कौशल कुमार का नाम और रोल नम्बर प्रोफेसर

साहब को बताकर 'सुधि' दिला दी। "कौशल कुमार तो चौथे नम्बर पर है—प्रथम तो कोई और है।"···वर्मा साहब ने अपनी पत्नी को अकतालिका दिखाते हुए कहा। लेकिन इससे क्या, दूध और घी की पौष्टिकता तो जहा पहुंचनी चाहिए थी वहा पहुंची थी। आलोक को द्वितीय स्थान और कौशल को प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। प० सुखदेव को एक हजार की पुरस्कार राशि ने घाटे मे नही रहने दिया। इसके आठ-दस दिन बाद जाने कैसे पण्डितजी की भैंस बीमार हो गई और दूध-घी सब सूख गए। प० सुखदेव ने बहुत दुखी मन से ललिती बेटी के लिए दूध-घी नहीं पहुंचा सकने की विवशता प्रकट कर दी।

आलोक को बहुत आघात लगा। वह पाच सौ रुपयों का द्वितीय पुरस्कार मा के चरणों पर रखकर रो पड़ा। मा ने उसे गले लगाया और पीठ थपथपाकर जीवन मे निराश न होने को कहा। फिर अपने आचल को पुत्र की आंखो पर लगा कर स्वयं रो उठी। फिर गला साफ कर बोली—"बेटा, जिन्दगी डामरी सड़क नहीं है। सपाट नही होता जीवन। इस पथ पर तो कई जगह गहरे गड्ढे हैं, कंकड़ हैं, कटक हैं। इन्हें साहस के साथ छलाग लगाकर या कुचलकर ही आगे बढ़ना होता है।"

एक दिन आलोक ने कहा, "मा हमारे कॉलेज मे दफ्तरी शुक्ला का स्थान खाली हुआ है। बडे बाबू ने कहा था कि मैं चाहू तो प्रार्थना-पत्र दे दू।" किरण देवी ने बेटे की तरफ देखा। आखों मे दीनता अपनी गोदी मे विवशता को छिपाए दिखाई दी। दफ्तरी अर्थात् लगभग चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी। उन्होंने मुह दूसरी ओर कर लिया। आलोक समझ गया। उसने कहा—"मा, आप मन छोटा मत करो। काम तो अच्छा या बुरा ही होता है न। मैं बी० ए० पास हूं। मुझे अधिक योग्य जानकर ही यह बात कही गई है, अन्यथा पहला हक तो रामदीन चपरासी का है। दफ्तरी तो जमादार जैसा होता है।" मा ने केवल इतना ही कहा—"बेटा, जैसी भगवान की इच्छा।" उनकी आखें सजल हो आयीं तो आसू को छिपाने के लिए उठकर रसोई मे चली गई।

आलोक ने प्रार्थना-पत्र दे दिया। चपरासियों का विरोध हुआ, किन्तु दफ्तरी के पद के लिए शिक्षित होना भी आवश्यक था। दफ्तरी यानी दफ्तर की फाइलों को सभालने मे कुशल। प्राचार्य ने विरोधी लोगों को समझा-बुझाकर शांति स्थापित कर दी। आलोक मन लगाकर काम करता। दफ्तर की सफाई करता, फाइलें जमाता, डाक को व्यवस्थित करता और प्राचार्य तथा कार्यालय कक्ष के बीच बाहर स्टूल पर बैठा रहता। घंटी बजती और बड़ी नम्रता से भीतर जाकर आदेश सुनता तथा उसका पालन करता। दो-तीन माह इसी सन्तुष्टि के बीच बीत गए।

उड़हुं काग जे आवैं

राधेश्याम 'अटल'

क्ष्मी ने जब से अपने भतीजे की शादी का समाचार सुना है, उसके पैर धरती पर नहीं टिकते। अपने पति से रोजाना कहती है, "देखो जी ! मेरे भतीजे की शादी सत्रह फरवरी की है और इस शादी में इन कपड़ो से नहीं जाऊंगी मैं। आपको एक अच्छी-सी साड़ी तो लानी ही होगी मेरे लिए। मेरा भाई कोई ऐसा-वैसा नहीं है; पैसे वाला है। बड़े-बड़े लोग आएंगे वहां। मैं इन पंडिताई में आए दान के कपड़ों में क्या अच्छी लगूंगी वहां ? आखिर आपकी भी तो इज्जत का ख्याल रखना है मुझे ! इन कपड़ों में देख, कोई क्या कहेगा ?…कि पंडित हरिदत्तजी की माली-हालत अच्छी नहीं लगती।"

"क्या बात कही है लक्ष्मी तुमने ! हम तुम्हारे लिए साड़ी अवश्य लाएंगे और किसी को अहसास नहीं होने देंगे कि तुम एक निर्धन विप्र की पत्नी हो।… लेकिन…एक बात हम तुमसे पूछना चाहेंगे कि जिस दिन तुम्हारे भतीजे की सगुन आई थी, उस दिन… तुम्हें क्यों नहीं बुलाया गया ? कहीं तुम्हारी निर्धनता की हालत तो दीवार नहीं बन गई थी उसमें ?"

इन प्रश्नों को सुनकर लक्ष्मी पहले तो अवाक्-सी हो गई। उसके मन में एक द्वन्द्व छिड़ हो गया। एक तरफ पति की इज्जत थी और दूसरी ओर भाई के प्रति सम्बन्धों की आत्मीयता। वह दोनों को नकार तो नहीं सकती है न। अन्त में उसने कुछ तुनकते हुए जवाब दिया, "तुम मर्दों में यही कमी होती है। तुम्हारे अहं का फन जरा-जरा सी बातों से आहत होकर फुफकार मारने लगता है। यह भी तो हो सकता है न कि यह सब जल्दी में हुआ हो, वरना क्या ऐसा हो सकता है कि एक बहन को तो बुलाया जाए और दूसरी को नहीं ? मेरा भाई ऐसा हरगिज नहीं है। वह पैसे वाला होने के साथ-साथ इन्सान भी है।"

पण्डित हरिदत्त ने बात का बतंगड़ न बनाने के भाव से माहौल को सहज

बनाते हुए कहा, "अरे, अरे… तुम तो बुरा मान गईं। मेरा मतलब यह थोड़े ही था कि हमारे पंडित जी ने शायद मैं जान-बूझकर तुम्हें नहीं बुलाया। जब कोई अच्छी साड़ी पास नहीं होगी। वरना—ऐसे मौके पर ही सकता है कि तुम्हें नहीं बुलाया जाता। अच्छा अब एक काम करो! इस बाजार जाकर तुम्हारे लिए साड़ी लाते हैं और तुम जरा धोकर जरा बन-ठन लो माँ, हो सकता है तुम्हारे भाई साहब आज ही आ जाएं। वैसे भी शादी के पांच दिन ही रह गए हैं।"

इस बात को सुनकर लक्ष्मी के मन में मोर नाचने लगे। मन्द-मन्द मुस्कराती हुई इतराती-सी बोली, "अब मजाक करने की उम्र नहीं रही पंडित जी और न हमारे बनने-ठनने के दिन। खैर, आप कहते हैं तो हम एक बार कोशिश जरूर करेंगे। आपके आदेश की पालना के लिए ही सही, लेकिन आप पधारिये भी सही। कस्बा भी यहां से चार मील है, फिर उतना ही चलकर लौटना। लेकिन यह ध्यान जरूर रहे कि साड़ी अच्छी होनी चाहिए, वरना…।"

पण्डित हरिदत्त अपने गांव गम्भीरा से चार मील दूरी पर बसे कस्बे 'सिरसी' के लिए प्रस्थान कर गए। लक्ष्मी के मन में नई साड़ी की सतरंग हिलोरें मारने लगी। भतीजे की शादी का परिदृश्य उसकी आंखों में नाचने लगा। वह मन-ही-मन फूली नहीं समा रही है। सोच रही है—आज नहीं, तो कल तक जरूर आ जाएगा उसका भाई। पहले तो इतना विलम्ब से लेने आने का उलाहना दूंगी उसे; फिर जाऊंगी उसके साथ। कई वर्षों बाद जाना होगा इस बार, जी भरकर मिलूंगी भाभी से और सेठानी बन कर दिखाऊंगी उसे भी नई साड़ी में। एक बार तो दर्प चूर करके ही रहूंगी उसका। और विदाई में तो ग्यारह-इक्कीस नहीं ही लूंगी—चाहे कुछ हो जाए। इस बार तो कोई चीज लेकर ही रहूंगी।" इन्हीं विचारों में खोई अपना घर का काम भी निबटाती रही। गृहस्थ के कार्यों से निबट कर काली मिट्टी से सिर धोया और साबुन से रगड़-रगड़ कर नहाई खूब। उपलब्ध शृंगार सामग्री से सजने का उपक्रम भी किया; लेकिन पाउडर का अभाव तो खलता ही रहा। लक्ष्मी ने सोचा—शायद पड़ोसिन के पास जरूर होगा। इस बहाने उसे भतीजे की शादी में जाने का समाचार भी दे आऊंगी और उसे जल-भुन जाने का अवसर भी तो मिलेगा। आज आखिर वर्षों बाद शृंगार किया है मैंने। फिर उससे तो कहीं खूबसूरत ही हूं।

संध्या वातावरण पर उतरने को थी। लक्ष्मी बार-बार दरवाजे से बाहर निकल-निकल कर अपने पति का पथ निहार रही है। नई साड़ी की उत्सुकता एक जगह पैर नहीं टिकने दे रही है। कभी पति का पंथ निहारती है और कभी

भाई का मार्ग। पण्डित हरिदत्त को आता देख उसका मन बाँसों उछलने लगा। उसी समय उसके घर की खपरैल पर एक कौआ काँव-काँव की ध्वनि उच्चारित करने लगा। लक्ष्मी कौवे को बोलता सुन फूली नहीं समा रही है। कल्पना करती है। अब उसका भाई भी आने ही वाला होगा।…कौए से (भाई के आने की प्रमाणिकता के लिए) उड़ने को कह रही है।

पण्डित हरिदत्त इस दृश्य को देखकर मुस्कराते हुए लक्ष्मी के निकट आ पहुँचते हैं; किन्तु लक्ष्मी को इसका आभास भी नहीं हुआ। पण्डितजी ने निकट पहुँचकर कहा, "अरे, भई! ऐसी भी क्या बेसब्री है? आते होंगे। आज नहीं तो कल आ ही जाएँगे। लो, यह नई साड़ी लो! अरे, वाह! हमने तो गौर से देखा ही नहीं। क्या बात है भई! इधर आओ, आज हम तुम्हारे काला टीका जरूर लगाएँगे।"

लक्ष्मी सकुचाती हुई साड़ी छीनकर तेज कदमों से अन्दर भाग गई और तुरन्त साड़ी पर लिपटा कागज फाड़कर साड़ी देखने लगी। साड़ी की सुन्दरता में खो गई लक्ष्मी। कभी साड़ी को कंधे पर लटका कर निहारती है और कभी कमर में खोंसकर। पण्डित हरिदत्त उसकी कल्पना को भली-भांति समझ रहे हैं। नारी को वस्त्र और आभूषण अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय होते हैं। फिर इस अवसर पर तो भतीजे की शादी की उत्सुकता सोना और सुगंध का योग कर रहा है। पण्डितजी ने सगर्व गर्दन फुलाते हुए कहा, "अरे, ऐसे क्या देख रही हो? जरा पहनकर देखो, ताकि हम भी देख सकें कि हमारी हृदयेश्वरी इस साड़ी में कैसी फबती है!"

लक्ष्मी ने हाथ नचाते-इतराते हुए सा कहा, "रहने दो! मैं तुम्हारी बातों में आने वाली नहीं हूँ। इस साड़ी को तो बिरादरी के समय पहनूँगी, देख लेना। इस साड़ी में मुझे देखकर तो थोड़ी भी अपने-आप नाचने लगेगी और पैरों के बल से चूर भाभी के सीने पर तो साँप लोटने लगेंगे; लेकिन भैया बहुत खुश होंगे इस साड़ी में देखकर। भले मिथ्या ही सही, लेकिन कल्पना जरूर करेंगे कि शायद मेरी बहन की हालत अब सुधर गयी लगती है। अरे, हाँ! यह तो बताओ, यह साड़ी कितने की है?"

पण्डित हरिदत्त ने मूल्य के प्रति उपेक्षित भाव-सा जताते हुए कहा, "अरे, कीमत से तुम्हें क्या लेना-देना? तुम तो यह बताओ कि तुम्हें साड़ी पसन्द आयी या नहीं? इस समय मूल्य साड़ी का नहीं, हमारे पति-धर्म के मान-सम्मान का है। तुम्हारी इज्जत ही तो हमारी इज्जत है लक्ष्मी। नारी के मान-सम्मान की रक्षा और आवश्यकताओं की पूर्ति करना ही तो पति का परम धर्म है। हम अपने धर्म

और कर्मकाण्ड के विरुद्ध मैं कोई और बात नहीं कहूँगा, लक्ष्मी। हाँ, इसकी महत्ता को कभी अस्वीकार भी नहीं करते। और, छोड़ो इन बातों को। इन बातों में हमारी बहस बेकार है। आखिर, पण्डित जो ठहरे न!" हरिदत्त बोले, "बस, करने लगे मीरा की-सी व्याख्या।"

"अब यह बताओ, भोजन तैयार है या नहीं? भूख बड़े ज़ोर की लग रही है। हम हाथ-मुंह धोकर आते हैं, तुम थाली लगाओ।"

आज लक्ष्मी ने भोर को भी नहीं जगने दिया, उससे पहले ही जग गई, नहाई-धोई, सुलभ शृंगार प्रसाधनों का भरपूर उपयोग किया। थोड़े-से कपड़े जो लगभग ठीक-ठीक से थे, उन्हें एक थैले में जमाया और करीने से संभालकर रखी, मैं साड़ी। भैया के लेने आने की आज उसे सौ फीसदी उम्मीद है। कल तो देर हो ही गया, परसों मंगल। परसों तो वह मंगल के कार्यक्रम में व्यस्त हो जाएगा और बस से छूट जाएगा मंगल की तैयारी में। आखिर, बैंक का मैनेजर है मेरा भाई! बड़े-बड़े लोग आएंगे। उनके लिए ढेर सारी मिठाइयां बनवायेगा। ऐसा थोड़ा ही करेगा कि अधिकारियों के लिए होगा विशेष भोजन और शेष काढ़ने रहेंगे वही पूरियां। लक्ष्मी की आंखों के आगे गुलाब जामुन सिकने लगे, और कटने लगी काजू की बर्फी। दही-बड़ों को रखने की समस्या का हल ढूंढने लगा उसका उत्सुक मन। कड़ाई में पूरियां, कचौरियां उसके चंचल मन की तरह तैरने लगीं। फिर अचानक उसे याद आया। अरे, मैं निठल्ली कैसे बैठी हूं? खाना बना लेना चाहिए। थोड़े-से चावल भी बना लूंगी लगे हाथ, वरना क्या तब बनाऊंगी जब भैया आ जाएंगे। वह तो आते ही जल्दी मचाने लगेंगे। और लक्ष्मी ने बड़ी फुर्ती से सारे काम निपटा दिए। इस ही बीच तीन-चार बार देख आई थी बाहर जाकर। इस बार जब दरवाजा खोला तो एक कौआ उसके घर के मुंडेरे पर आ बैठा और करने लगा काँव-काँव'''। फिर कौए से बतियाने लगी। "तेरे हाथ जोड़ती हूं काकभुशुण्ड महाराज, यदि मेरे भैया आते हो तो उड़ जाओ।"

अब की बार सचमुच उड़ गया था कौआ। लक्ष्मी के मन की गति लहरों की भांति चंचल हो उठी। कौन-से शब्द हैं वे, जो लक्ष्मी के उस समय के मन की हर्ष-विभोर गति का वर्णन करने में सक्षम हो सकते हों। वह बिजली की भांति तुरन्त अपने पति के पास पहुंच गई। लिहाफ खींचकर इठलाती-सी बोली, "अजी, सुनते हो! देखो, सूर्य उदय होने को है। फिर कहोगे कि सूर्य उदय होने के पश्चात् का स्नान रक्त स्नान होता है। जल्दी उठो और अमृत से न सही जल से तो स्नान कर ही लो, फिर सुनाऊंगी एक खुश खबरी।"

पण्डित हरिदत्त ने करवट से सीधे होते हुए एक हल्की-सी हुंकार भरी, आंखें

मसली और दोनों हथेलियों को रगड़कर अपनी आंखों के सम्मुख फैलाते हुए एक श्लोक का उच्चारण किया—

> कराग्रे वसते लक्ष्मी, कर मध्ये सरस्वती।
> कर मूले स्थितौ ब्रह्मा, प्रभाते कर दर्शनम् ।।

तत्पश्चात् पण्डित जी ने अपनी पण्डिताइन की ओर मुस्कराते हुए कहा, "अरे··· रे, लगता है हमारी पण्डिताइन तो आज सोई भी नहीं है। क्यों, क्या बात है? क्या सारी रात भर काग-शकुन ही मनाती रही हो?" थोड़ा सूंघने की-सी भाव-मुद्रा बनाते हुए बोले, "अरे यह पके चावलों की-सी खुशबू सुबह-सुबह कहां से आ रही है?"

कुछ झुंझलाते हुए लक्ष्मी ने अपने पति का हाथ पकड़कर स्नेह से उन्हें बैठा कर ही दिया और नाटकीय मुद्रा बनाती हुई बोली, "वाक्-पटु तो आप बहुत हो गए हैं कथा पढ़-पढ़कर। अब उठ भी जाओ श्रीमान्! ऐसे में यदि मेरे भैया आ गए न, तो कहेंगे हमारे जीजाजी बहुत आलसी हैं। यह भी कोई वक्त है सोकर उठने का! अरे, हां सुनो! आज तो सचमुच में कौआ, मैंने भैया का नाम लेकर कहा कि तुरन्त उड़ गया। अब आप जल्दी से उठो और अपने पूजा-पाठ से निवृत्त हो लो! देख लेना, थोड़ी देर में वह आते ही होंगे। एक तो खुद विलम्ब से आएंगे और फिर लाट साहबजी मचाने लगेंगे जल्दी। दोष उसे भी क्या दें? घर में अकेला जो है।"

पण्डित हरिदत्त नारी मन की भावनाओं को भली-भांति समझ रहे थे। अन्त ं मुस्कराते हुए उठे और अपनी नित्य क्रियाओं को शीघ्र सम्पन्न करने का ाश्वासन देकर बाहर चले गए। लक्ष्मी ने समय का सदुपयोग करने की दृष्टि से ापने हाथ-पैरों में मेहदी लगाना प्रारम्भ कर दिया और मेहदी लगाकर बैठ गई रवाजे पर। जो भी महिला घर सामने से गुजरती, उसके हाथों-पैरों की मेहदी को ख, कुछ टेढ़े-बांके प्रश्न कर लक्ष्मी के मन को गुदगुदा जाती और लक्ष्मी भतीजे ी शादी में जाने का समाचार उमगते मन से सुनाने में मशगूल हो जाती। इसी म में दिन काफी चढ़ आया था। उसके हाथों-पैरों की मेहदी भी सूख चली थी। ते ही में पण्डित हरिदत्त भी स्नानादि से निवृत्त होकर चले आ रहे थे। उन्हें रकर लक्ष्मी अन्दर चली गई। शायद मन में सोच रही थी कि इस तरह दरवाजे हो खड़ी देखकर वह जरूर कुछ-न-कुछ व्यंग्य से लिपटा कोई श्लोक सुना देंगे। ानों से यह खतरा तो बना ही रहता है।

पण्डित हरिदत्त श्रीराम-श्रीराम जपते हुए आए और लक्ष्मी को कुछ उदास-देखकर उन्हें समझते हुए देर न लगी कि शायद लक्ष्मी को अपने भाई के

भाई भी अब [illegible] नहीं है। [illegible] लक्ष्मी [illegible] से [illegible] किया और [illegible] अपने [illegible]। [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] आता फिर बातें ही हो रहीं, [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] लक्ष्मी ने [illegible] [illegible], [illegible] लक्ष्मी ने उन्हें देखकर पुनः लिफाफा लिया और ले आई [illegible] के हाथ में भतीजे की शादी का निमंत्रण पत्र। निमंत्रण पत्र अपने पति को देकर एक प्रस्तर मूर्ति सी खड़ी हो गई लक्ष्मी। पण्डित हरिदत्त ने निमंत्रण पत्र खोला और पढ़ा। पढ़कर मुस्कराहट हँसी हँसते हुए बोले—

"अरे, मूर्ती हो लक्ष्मी ! इसी निमंत्रण पत्र में तुम्हारे भाई ने लिखा है कि लक्ष्मी को पहला समय था। प्रभात होने के कारण मैं उसे लेने नहीं आ सका; शायद वह मेरी मजबूरी समझ जाएगी। अब आप लोग पत्रिका मिलते ही शीघ्र आ जाओ। श्वसुराल में सोचते वक्त मधुश्री को तो मैं ले आया था। अब तुम लोग जल्दी आ जाओ।" पत्रिका रखते हुए पण्डित हरिदत्त बोले, "लक्ष्मी ! अब जल्दी करो। हम तुम्हें बस में बिठा आते हैं। देखो, मैं तो अब नहीं जाऊँगा; क्योंकि घर पर भी तो आखिर कोई रहना चाहिए न !"

लक्ष्मी की आँखों से दो आँसू बरबस टपक पड़े। फिर थोड़ा धैर्य बाँध, सहज होकर बोली, "बस करो, स्वामी ! बहुत हो चुका। यही तो होता है वह दिन, जिस दिन बहन के मान का सम्मान होता है; वरना मायके का रास्ता मुझसे अनभिज्ञ नहीं है। काश, मैं भी पैसे वाली होती स्वामी ! वह एक बार नहीं, दस बार आता मुझे लेने। बहन मधुश्री को लेने उसे जाना ही पड़ा, क्योंकि वह इनकम टैक्स ऑफिसर की पत्नी है। हमारा क्या ! हम जो ठहरे एक गरीब ब्राह्मण। सुदामा की भी खैर-खबर कृष्ण ने ही ली थी, वरना किसने पूछा उसे ? अच्छा हुआ स्वामी ! जो मैंने किसी सन्तान को जन्म अवश्य ही नहीं दिया, वरना मौके पर फिर काग उड़ाने की नौबत आती। अब हम नहीं जाएंगे इस शादी में।"

पण्डित हरिदत्त विस्मय से आँखें फाड़े अवाक् देखते रहे। फिर कुछ समझाते हुए बोले, "लक्ष्मी ! तुम ऐसी बातें क्यों कर रही हो ? तुम्हें जाना चाहिए। आखिर तुम्हारे भतीजे की शादी है। हो सकता है वास्तव में उन्हें समय नहीं मिला हो। फिर'''अपने घर जाने में कैसा सोच-विचार !"

लक्ष्मी ने अपने पति से आँखें मिलाते हुए नम्रतापूर्ण कहा, "बस, रहने भी दीजिए। अब और परीक्षा न लीजिए मेरी। एक बहन के मन में जिस मान-सम्मान की भाई से अपेक्षा होती है, उसे एक नारी ही जान सकती है। आइये,

अंदर चलिए ! मैं नई साड़ी पहनकर आती हूं फिर खाएंगे चावल-बूरा। समझ लीजिए, बारातियों को चावल-बूरा ही परोसा गया है इस शादी में। थोड़ी न सही लेकिन आप जरूर नाच उठेंगे मुझे नई साड़ी में देखकर।"

आखिर, पण्डित हरिदत्तजी पुलकित हो उठे। अपनी पत्नी के कंधे पर हाथ रखते हुए बोले, "तुम्हें पाकर मैं धन्य हो गया लक्ष्मी। मुझे उम्मीद है, तुम्हारे रहते अपने मान-सम्मान की रक्षा करता हुआ, गरीबी से कभी हार नहीं मानूंगा।"

—और दोनों पति-पत्नी मुस्कराते हुए भोजन करने बैठे। लक्ष्मी ने अपने पति के शब्दों को दोहराते हुए कहा, "आपने ठीक ही सोचा था, लगुन पर भी न बुलाई जाने का कारण···कहीं तुम्हारी निर्धनता की हालत तो दीवार नहीं बन गयी इसमें।"

चलो, घर लौट चलो

राम शकुन

वह काफी देर से शीशे के सम्मुख खड़ी थी। वैसे अब शीशे के सामने आने की आदत उसकी बहुत कम हो गई थी। उसे शीशे में खुद को देखने से भय लगता था। लेकिन पुरानी आदतें कुछ न कुछ बनी ही रहती हैं। हां, कल्पनाएं जरूर बदल जाती हैं। भूतकाल की असीम रोमांचक उड़ानें धीरे-धीरे धरती पर आ लगती हैं। वर्तमान में ऐसा लगता है पर ही कट गए और भविष्य···अन्धकारमय नजर आता है।

विवाह होता ही है। यह भी एक अजीब खेल है। इस खेल में कई प्रकार के दृश्य देखने को मिलते हैं। कुछेक भावनाएं फलीभूत भी होती हैं। कुछेक फलीभूत होती लगती हैं और कुछेक के फलीभूत होने की आशा रहती है। लेकिन शीशे में अपने चेहरे को देखने-समझने और उसमें गहराई तक उतरने वाले जीव की भावनाएं अन्त की ओर बढ़ते हुए बहुत बुरी तरह दम तोड़ती चलती हैं।

ऐसा ही कुछ जूही के साथ घटना शुरू हो चुका था। शीशे के सामने इतराने वाली जूही का विवाह हुआ। वर अच्छा मिला। लेकिन रूप के मामले में वह शुरू से ही हीन भावना का शिकार था। नाम था—चन्द्र। थुलथुले शरीर वाले चन्द्र की आंखों की चमक, नववधू जूही को देखते ही बुझ सी गई। खैर! उसने अपनी आन्तरिक भावनाओं को चेहरे तक नहीं आने दिया। जूही को शुरू-शुरू में आश्चर्य भी हुआ कि जो चन्द्र रात में पूरा खिलंदड़ा बना रहता है, वही दिन में उससे कतराता क्यों है? इस प्रश्न का उत्तर उसके मन और मस्तिष्क ने तुरन्त दे दिया—पुराने खयालातों का परिवार है, संभवतः इसीलिए चन्द्र घर के सदस्यों के सामने उससे खुलकर बात नहीं कर पाता।

समय बीता। चन्द्र और जूही की घर-गृहस्थी अलग बसी। एक बेटी भी हो चुकी थी—दिव्या। चन्द्र का व्यवहार यथावत रहा और जूही ने भी इस सवाल को अंधेरे कोने में पटक दिया था। इसी बीच जूही का एक बेटा भी हो गया।

सन्तान मां का रक्त चीनती है, रूप लेती है और उसकी चमक को धुंधला देती है, लेकिन इससे मां को खुशी होती है। नन्हे रवि को देख-देखकर जूही खिल उठती थी।

और एक दिन जूही को शीशे के सामने खड़े होने की पूरी फुर्सत मिली। रवि नानी के साथ खेल रहा था। दिव्या स्कूल गई थी और चन्द्र ऑफिस। जूही नहा-धोकर गीली केश-राशि को झटकती हुई शीशे के सामने आ खड़ी हुई। आज बहुत दिन बाद वह अपनी धुन में गुनगुनाती हुई अपनी पुरानी और चिर-परिचित स्टाइल से शीशे में अपने को निहार रही थी।

उसकी दृष्टि अपनी बालों पर गई…वही, पहले जैसी काली घटाओं सदृश। हां, झड़ने के कारण बाल जरूर कुछ छट गए थे किन्तु उनकी चमक बरकरार थी। आरम्भ से ही उसकी भवें चित्ताकर्षक हैं और उनका आकर्षण अभी भी वैसा ही था। उसने कभी आइब्रो का प्रयोग नहीं किया। अब उसकी दृष्टि आखों पर आकर ठहर गई। पलकों का घनापन पूर्ववत बना हुआ था। बड़ी-बड़ी आखों के खिंचाव में कोई कमी नहीं आई थी पर पुतलियों की चमक अवश्य कुछ धुंधला गई थी। सुतवां नाक की ढलान तो ठीक-ठाक थी किन्तु अधरों की प्राकृतिक लालिमा मटमैली-सी क्यों हो गई? उसने अपने अधरों पर जीभ फिराई और दांतों से उन्हें दबाया पर उनके रंग पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। पहले तो जब वह ऐसा करती तो होठों पर रक्त छलछला सा जाता था। अरे! यह क्या? स्वयं मुग्धा जूही चौंकी। आखों के दोनों ओर के अन्तिम सिरों पर सलवटें…बेहद हल्की। लेकिन ये पहले तो नहीं थीं।

उसे शीशे में दरवाजे से अन्दर घुसता चन्द्र नजर आया। वह हल्के अंदाज में हंसी। दोनों नेत्रों के सिरों पर की सलवटें उभर कर गहरी हो गई। वह मुड़ी और बोली।

"आज बड़ी जल्दी आ गए?"

"कुछ कागजात लेने थे। आलमारी की चाभी देना।"

चन्द्र कमरे से बाहर निकल गया। जूही ने उसका अनुकरण किया। अन्य कमरे में आकर उसने अपनी कमर से खुसी चाभियों का गुच्छा निकाला और आलमारी खोल दी। चन्द्र ने आलमारी में से एक फाइल निकाली और ऑफिस लौट गया।

जूही ने सोचा, अच्छा रहा कि आज वह चन्द्र को देखकर मुस्कराई—हंसी नहीं। वह अक्सर चन्द्र की हर कार्य में हड़बड़ाहट देखकर हंस पड़ती थी। उसने ऑफिस की एक महत्त्वपूर्ण फाइल ले जाने की बात परसों रात कह दी थी "कल रात भी कही, और सुबह फाइल ले जाना भूल गया। उसकी ऐसी ही बातों पर जूही दिल खोलकर हंसती। चन्द्र अपनी हीन भावना के कारण इस चुहलबाजी का

कोई अवसर नहीं छोड़ता था। कैसे मन अन्दर कुछ [illegible] [illegible] [illegible] आकर सुना जाता था। परिस्थितियां कैसी भी हों, दिन तो निकलते ही हैं।

चन्द्र के वापिस लौट आने के उपरान्त जूही पुनः शीशे के सम्मुख आ खड़ी। उसने एक बार मुड़ कर पुनः निहारा। चेहरे पर की सलवटें अब तक पहले जैसी नहीं है। पहले का दमकता हुआ चेहरा उसे बार-बार शीशे की ओर खींच लाता था और काफी देर तक अपने सामने खड़े रहने को विवश कर देता था। वह शीशे के आगे से हट गई। चेहरे पर हल्का सा मेकअप किया और पुनः शीशे में आकर देखा··· सलवटें दब गई थीं। एक गहरी सांस लेकर वह मां के पास आ गई और बातचीत करने लगी। कुछ ही समय हुआ था कि अन्दर वाले कमरे से रवि की रोने की आवाज आई। वह उठी और उसे दूध पिलाने चली गई। रवि को बगल में लेटकर उसने उसे सहलाया और मातृ-सुख की अनुभूतियों में डूब गई।

दिव्या स्कूल से आकर मां के सामने खड़ी हो गई। जूही ने उसके चेहरे पर दृष्टि टिका दी···कितनी चमक है इसके चेहरे पर, और होंठ देखो, लगता है अभी पान खाकर आई है। ये सब इसने मुझसे से लिया। मां को खामोश देख दिव्या बोली।

"मम्मी खाना दो न।"

"अन्दर जाकर नानी से मांग ले। जा, नौकर खाना गर्म कर देगा।"

"मैं तुमसे ही खाना लूंगी। तुम हमेशा स्कूल से आते ही मुझे खाना डालती हो न, फिर आज क्यों नहीं ?"

"दिव्या बहस मत करो। भाई उठ जाएगा।"

दिव्या पैर पटकती हुई कमरे से बाहर निकल गई। जूही सोच में डूबी रवि की बगल में लेटी रही। अब जूही शीशे के सम्मुख आती तो प्रयत्न करती कि आंखों की कोरों की सलवटों की ओर ध्यान न जाए। लेकिन होता इसका उल्टा ही था। दिन प्रति दिन उसे ये सलवटें गहरी होती नजर आ रही थी। उसका हंसना-मुस्कराना, ठिठोलियां करना बंद हो गया। उसे भय था कि उसमें हो रहे इस बदलाव पर कहीं चन्द्र की दृष्टि न पड़ जाए। एक दिन चन्द्र ने पूछ ही लिया।

"जूही तुम्हारे स्वभाव में बड़ा बदलाव नजर आ रहा है ?"

"नहीं तो।"

"नहीं तो क्या, तुम बात-बात पर तो दिव्या को झिड़कती रहती हो।"

"उसकी आदतें बिगड़ रही हैं।"

चन्द्र चुप कर गया। जूही अपने से संघर्ष करने में लगी रही। बसंत··· पतझड़, पतझड़-बसंत गुजरते गए। जूही के आन्तरिक संघर्ष की व्यथा चेहरे पर, शरीर पर छाने लगी। शीशे का सच और भी अधिक ले बैठने लगा। उसके चेहरे

पर झांइया पड़नी शुरू हो गई। आखो के नीचे स्याह धब्बे उभरने लगे, अधर की ललाई तेजी से छटने लगी।

अब उसे शीशे के सम्मुख आने मे भय लगने लगा। वह दिव्या पर अधिक चिढ़ने लगी।

"तू शीशे के सम्मुख अपने को क्या निहारती रहती रही है?"

"मम्मी!"

"मम्मी क्या होती है। जाओ अपना काम करो। जब देखो, तब शीशा।"

कमरे में आते हुए चन्द्र ने जूही के अन्तिम स्वर सुन लिए थे। वह खामोश दिव्या को कमरे से बाहर जाते देखता रहा। और फिर पलटकर धीमे स्वर मे जूही से बोला।

"जूही, तुम्हें बच्चों को इस प्रकार से नही डाटना चाहिए।"

"अभी भी वह बच्ची है?"

इस उम्र मे तुम्हारा जीवन क्या था, याद है तुम्हें?"

"तो क्या अब मैं बूढ़ी हो गई हू? भद्दी हो गई हूं।"

"यह कौन कहता है?"

"तुम्हारा कहने का और क्या मतलब है?"

"तुम न जाने इतनी चिड़चिड़ी क्यो हो गई हो।"

चन्द्र कमरे से बाहर निकल गया। वह जूही पर पड रहे अन्त व्यथा के दबाव को समझ रहा था। उसने भी विवाह के पश्चात वर्षों तक इस दबाव को भुगता था। हा, इतना जरूर था कि उसने इसे बाहर प्रकट नही होने दिया। यह क्षमता जूही मे नही थी। उसे पता था कि जूही अब उसका स्थान ले चुकी है। वह तेजी से क्षय होती जा रही जूही को जितना अधिक संभालने का प्रयत्न करता, उतना ही वह असंतुलित होती जाती। एक दिन उसने बड़े प्यार से जूही को समझाया।

"जूही तुम्हारा असतुलन पूरे परिवार के बरबादी का कारण बन जाएगा।"

"तुम पर मेरे असतुलित होने से क्या फर्क पड रहा है? तुम खाना नही खा रहे हो, तुम सो नही रहे हो? तुम दफ्तर नही जा रहे हो?"

"क्या जीवन इतना ही है?"

"तुम्हारी कौन सी इच्छा पूरी नहीं हो रही है? मैंने तो तुम्हें असतुष्ट देखा नही। उल्टे अब तो तुम कुछ अधिक ही सन्तुष्ट नजर आते हो।"

"मैं तुम्हें क्या कहूं। मैंने तुम्हें पहले भी समझाया था कि शीशे के मनोविज्ञान पर मत जाओ। मनुष्य के शरीर मे बदलाव आना अटल नियति है। हमे इस बदलाव के अनुकूल होना पड़ेगा। तुम अगर अपने मे आते बदलाव के साथ नही ढल सकती हो तो शीशे के सम्मुख आना छोड़ दो।"

मरे से बाहर निकल गया। उसी समय दिव्या स्कूल से लौटी और सीधे म
मरे में आई। उसकी दृष्टि भी स्वाभाविक रूप से ड्रेसिंग टेबिल की ओर
ई।

"जाओ, अपने कपड़े बदलो। मैंने ड्रेसिंग टेबिल यहा से हटवा दी
बेशर्मी की हद होती है। अब देखो, महारानीजी को अपना चौखटा देखने के लि
शीशा चाहिए।" मा के वचन सुनकर दिव्या उखड़ गई और पैर पटकती
कमरे से बाहर आ गई। बैठक के आगे से गुजरते हुए उसे पापा दिख गए।

"पापा!" वह और अधिक कुछ नही कह पाई। उसके नेत्र भर आए।

"अरे! कमाल है। इतनी सी बात पर रोती हो।"

"पापा शीशा देखना अपराध है क्या?"

"कौन कहता है?"

"मम्मी के कहने का यही अर्थ है।"

"बेटी, एक बात के कई अर्थ निकलते हैं। तुम्हे मम्मी की इतनी सी बात
बुरा नही मानना चाहिए।"

चन्द्र ने समझा-बुझाकर दिव्या को शात किया। वह आया तो घर में आ
करने के लिए था, किन्तु शीघ्र भाग खड़ा हुआ। उसे लगा कि अगर जूही
यही स्थिति रही तो वह कही अपना मानसिक सतुलन न खो बैठे। उसने म
चिकित्सक की राय ली। उसकी राय यही थी कि जूही को शीशे से दूर रखा ज
और उसके सामने सुन्दरता और असुन्दरता पर बिल्कुल बात न की जाए।
ने सोचा, चलो यह भी ठीक रहा कि जूही ने स्वय ही शीशे हटा दिए। अब
सचेत रहता कि कोई भी बात जूही के मानस के प्रतिकूल न हो। उसने दि
को भी समझा दिया।

पाच-सात महीने बीत गए। रवि की नानी जा चुकी थी। रवि को सभा
के लिए एक आया का प्रबन्ध कर दिया गया था। जूही स्वयं के प्रति बेहद ला
वाह हो गई थी। एक दिन उसे न जाने क्या सूझा। नहाई-धोई। आया ने उ
बाल सवार दिए। वह उठी और स्टोर की ओर बढ़ी। कमर में खुसा चाभी
गुच्छा निकाला और स्टोर खोला। स्टोर न जाने कब से धूल से अटा पड़ा
वह बेखबर हुई ड्रेसिंग टेबिल के आगे खड़ी हो गई। महीनों बाद उसने अ
शक्ल देखी थी। वह अपने को अनजानी दृष्टि से घूरती रही।

'तुम जूही नहीं हो न?' वह बड़बड़ाई।

'बोलो —तुम जूही हो ?'

'नही बोलोगी ?'

उसने ड्रेसिंग टेबिल के पास ही रखा हथौड़ा उठाया और शीशे पर दे मारा। शीशे के किरचे-किरचे हो गए। कुछ उसके हाथ और चेहरे पर भी लगे। आया भागी आई। बड़ी मुश्किल से उसने जूही को काबू में किया। अकेली आया की समझ में नही आया कि क्या किया जाए? उसने शोर मचाकर आस-पड़ौस एकत्रित कर लिया। अन्य स्त्रियों ने मिलकर जूही को एक कमरे में बन्द कर दिया और एक सज्जन ने चन्द्र को फोन किया।

कुछ ही देर में चन्द्र घर पहुंच गया। उसके साथ डॉक्टर भी था। चन्द्र ने उस कमरे का द्वार खोला जिसमें जूही को बन्द किया गया था। जूही की आंखों से वहशीपन टपक रहा था। चन्द्र उसकी आंखों से आंखें नही मिला सका। वह स्नेहपूर्ण स्वर में बोला।

"जूही शांत हो जाओ।"

"कौन हो तुम ?"

"मैं चन्द्र हूं।"

"कौन चन्द्र ?"

"तुम्हारा पति।"

"मैं कौन हूं।"

"मेरी पत्नी—जूही।"

जूही हंसी और फिर तीव्र स्वर में बोली।

"तुम झूठे हो। मैं जूही थी, हूं नही। झूठ बोलते हो, निकल जाओ इस कमरे से। जाओ, अपनी जूही के पास जाओ।"

"डॉक्टर।" चन्द्र ने डॉक्टर की ओर देखा।

"इन्हें पकड़ो। मैं नींद का इंजेक्शन लगाता हूं। लगता है मैंटल हॉस्पिटल में भर्ती करवाना होगा।"

डॉक्टर के कथानुसार जूही को मैंटल हॉस्पिटल में दाखिल करवा दिया गया। चन्द्र ने ऑफिस की दो दिन की छुट्टी ली। घर काटने को आ रहा था। जिस बात का विश्लेषण उसने आज तक नही किया था, आज एकान्त में उसी को विश्लेषित कर रहा था।"

"जूही ने कभी भी उसके सम्मुख अपने को स्वर्णलता के रूप में प्रस्तुत नहीं

किया। मन ही मन मे वह भले ही अपने रूप के प्रति आसक्त रही हो किन्तु पत्नी के रूप में उसने कभी भी उस पर हावी होने का प्रयत्न नहीं किया। आयु क क्रमिक विकास प्रत्येक का रूप-रंग हरता है। इस अवस्था में उसे चाहिए था कि वह जूही को मानसिक प्रश्रय देता। लेकिन इसके विपरीत वह अपनी हीन-भावना को संतुष्ट करता रहा। जूही के रूप-रंग को ढलता देखकर उसके पोर-पोर को सुकून मिल रहा था। शायद इसी कारण जूही के मानसिक रोग का विस्तार होता गया और आज वह इस अवस्था तक पहुंच गई। इसका एकमात्र कारण उसे अपनी निष्ठुरता ही नजर आ रही थी।"

उसने मन ही मन में संकल्प किया कि शाम को हॉस्पिटल जाकर जूही को अपने आगोश में ले लेगा और कहेगा—"जूही, तुम मेरे लिए वही हो जो आज से पन्द्रह वर्ष पहले थी। तुम्हारी कसम खाता हूं। तुम्हारी गंध मेरे रोम-रोम में बसी हुई है। चलो, घर लौट चलो। मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता।" □

और जंग छिड़ गयी !

नृसिंह राजपुरोहित

प्रात: आंगन में झाड़ू देते समय राजो के कानों में भनक पड़ी कि देश के उत्तरी भाग में जंग छिड़ गयी है। उसके हाथ स्वत: थम गए। घूंघट का पल्ला थोड़ा-सा तन गया और उसकी ओट में आंखें व कान बैठक की ओर लग गए। जेठजी जबरू से पत्र पढ़वा रहे थे··· सर्व ओपमा विराजमान अनेक ओपमा लायक भाईसा दरगजी को लिखी तेजा की तरफ से जय श्री अम्बे बंचनाजी। विशेष समाचार यह कि मुल्क के उत्तर में जंग छिड़ गयी है और मेरी पल्टन को मोर्चे पर जाने का हुक्म मिला है। आप किसी प्रकार की चिन्ता मत करना। माजी को मेरी ओर से पांव धोक अर्ज करना और बच्चों को प्यार···

······

राजो बुहारी से तिनका तोड़कर दांत कुचरने लगी। उसकी बड़ी-बड़ी आंखें फटी-सी रह गईं और सांस जोर-जोर से चलने लगी।

···मुल्क के उत्तर में जंग छिड़ गयी है और मेरी पल्टन को मोर्चे पर जाने का हुक्म मिला है···टूटे ग्रामोफोन रेकार्ड में अटकी सुई की तरह बार-बार यही शब्द उसके मानस में गूंजने लगे।

घर के काम-धंधे से निवृत्त होते ही उसने अपने जेठूते जबरसिंह को पकड़ लिया और गोद में बिठाकर प्यार करने लगी—मेरा प्यारा बेटा! मेरा राजकुमार। कितना होशियार, कितना समझदार।···और एक प्यार भरा चुम्बन जड़ दिया।

जबरू को चाची का गोरा-गोरा गोल चेहरा और बड़ी-बड़ी आंखें बेहद पसन्द थी। चाची के शरीर और कपड़ों से फूटने वाली एक विशेष प्रकार की गन्ध से वह भली प्रकार परिचित था। एक मीठी-मीठी और भीनी-भीनी खुशबू, जो उसकी मां के शरीर से निकलने वाली कसैली बू से बिल्कुल अलग प्रकार की थी।

वह प्यार से शिशु की तरह चाची की गोद में पसर गया और आंखें मूंदकर तबियत से खुशबू का आनन्द लूटने लगा। थोड़ी ही देर में उसने अपने ललाट पर

एक कोमल स्पर्श का अनुभव किया। चाची कह रही थी—जबरसिंह बेट
एक काम करोगे। मुझे तुम्हारे चाचाजी का पत्र पढ़कर सुना दे वीरा !
माजी से छिपाकर बहुत सारा मक्खन खाने को दूगी।

अब बात जबरु के समझ मे आई। इसीलिए चाचीजी के नेह मे उफान
है। वह भी सब समझता है, आखिर पाचवी जमात का होशियार विद्यार्थी

वह आखें नचाता हुआ बोला—अच्छा तो यह बात है !

—मेरा राजा बेटा ! चाची ने मुह नजदीक लाते हुए कहा और एक
भरा चुम्बन पुल. जड़ दिया।

जबरु दौड़कर पत्र उठा लाया और गोद मे दुबककर पढ़ने लगा—
ओपमा…विराजमान…अनेक ओपमा… थोड़ा धीरे पढो जबरजी बेटा,
धीरे !…यहा इस पंक्ति मे क्या लिखा है? राजो एक पक्ति पर अगुली
हुई बोली।…उत्तर मे जंग छिड़ गयी है और मेरी पल्टन को मोर्चे पर
हुक्म मिला है…जबरु पढ़ता रहा और राजो के शरीर मे कपकंपी होने
पत्र पूरा पढ़कर जबरु ने ऊचा देखा, तो चाची की बड़ी-बड़ी आखो मे
भादों की घटा उमड़ती नजर आई। झड़ी लगने से पूर्व ही वह पत्र फेंककर
खड़ा हुआ।

आंसुओं की बाढ़ थमने पर राजो सोचने लगी— आज धनतेरस है औ
रूप चौदस…पिछली आषाढ़ शुक्ला नौमी को उसका ब्याह हुए पूरे तीन ब
गए। तीन बरसो मे वे केवल तीन बार घर आए—बीस-बीस दिन की छुट्टी
वह अगुलियों पर गिनने लगी…एक बीसी…दो बीसी…और तीन बीसी
बीसी दिनो के महीने कितने होते है? कौन जाने किसे गिनती आती है। पर
जरूर याद है कि उसने वे सारी रातें जागकर बिताई थी। पल-भर के लि
आखें नही मूदी। यह निवार की खाट और ये छाजन के खपरैल इस बात के
है। इन तीन बीसी दिनो के अलावा तो जिन्दगी के शेष दिन अकारथ ही
रोज सुबह होती है और फिर शाम ढल आती है। इस प्रकार जिन्दगी के दि
होते जाते है। रोज वही घर-गृहस्थी के काम-धंधे का जजाल। एक बधी
जिन्दगी। हमउम्र सहेलिया मिल-बैठती है तो थोड़ा मन बहल जाता है। पर
कभी तो उनकी वजह से भी मन उल्टा उदासी मे डूब जाता है।

उस दिन मौसम की पहली बरखा हुई थी और वह तालाब पर पानी
गई थी। पनघट पर औरतें गिणिहारी गाने लगी थी—

सात सहेल्या रो झूलरो ए गिणिहारी जी ए मो
गई गई समद तळाब-न्हाला ए ओ……

गाया है ई चाकरड़ी दीजियो निनिहारी जी ए मो
एकलड़ी है चीका नैण म्हारा ए मो……
गाया है ई चीकरी चढे बगे निनिहारी जी ए मो
एकलड़ी रे चीक्र परदेस म्हारा ए ओ……

मन एक गहरी उदासी में डूब गया था और जी अन्दर ही अन्दर कचोटने-सा लगा था। घर लौटने पर मटका रखवाते समय जिठानी ने पूछा था—क्या बात है री, आज बड़ी उदास लग रही है?

पर इस उदासी का कारण हर एक को कैसे बताया जा सकता है? बात को हंसकर टाल दिया था।

आज भी तालाब जाकर पानी लाने का समय हो गया है। घर का सारा काम-धंधा अधूरा पड़ा है। गाय के लिए चारा तैयार करना है, दही मथना है और फिर मटके भर-भरकर तालाब से पानी लाना है। परन्तु वह बस घड़ी दो घड़ी की देर है, फिर तो एक फटकारे की बात है। जोध-जवान काया के लिए काम-काज का क्या भार? पलक झपकते सब समाप्त हो जायगा। परन्तु थोड़ा-बहुत काम तो उसकी जिठानी को भी करना चाहिए। माना कि वह बड़ी है, पर इसका मतलब यह तो नही है कि वह दिन-भर अपने लाड़ले को सुलाती हुई बैठी-बैठी उन पर हुक्म चलाती रहे, और वह तेली के बैल की तरह लगातार काम में जुटी रहे! भगवान ने उसकी भी गोद भर दी होती तो कितना अच्छा रहता! जिठानी का गर्व चूर हो जाता। अपने बच्चे को लोरी गाकर सुलाते वक्त वह कितने गर्व से उसकी ओर ताकती है। बच्चा क्या जना है, मानो कोई बहुत बड़ा मीर मार लिया है, हुंह!

वास्तव मे मजा तो तब आता, जब उसकी गोद में भी एक शिशु होता। गोरा गोरा और नर्म-नाजुक रबड के बबले जैसा! वह उसे छाती से चिपकाकर बड़े प्रेम से दूध पिलाती। (उसे महसूस हुआ मानो उसके स्तनो के अग्र भाग में चींटियां रेंग रही हैं) बच्चा जन्मने पर मांजी की मंशा भी पूरी हो जाती। नही तो उठते-बैठते हरदम बस एक ही रट, तेजा का बच्चा आखो से देख लूं तो मरने पर मुक्ति पा जाऊं।

मांजी ही क्यो, मांजी के बेटे को भी बच्चे के लिए कितनी ललक है। पिछली बार छुट्टी मे घर पर आए तब ही की तो बात है—फौलादी पंजे में कलाई जकड़ ली तो काच की हरी-हरी चूड़ियां तड़क उठी। हंसकर कहने लगे—वह चाकरी वाला गीत तो सुना दे राजबण! आज तो मैं सचमुच चाकरी पर जा रहा हूं। मुझे धीमे परन्तु मधुर स्वर में गाना पड़ा था—

काळौड़ी तो कांठळ राज ऊपड़ी···
काई मोटोडी छांटां री बरसे मेह···
भंवर भल चढ़जौ राज चाकरी···
कांई रैवौ तो राधू ए राज लापसी···
काई चढ़ौ तो बाजरियौ खीच···
भंवर भल चढ़जौ राज चाकरी···

गाते-गाते मेरी आखें भर आई थीं। पर मैंने मुस्कराकर कहा था—गीत की अन्तिम कड़ी तो पूरी करते जाओ। वे गुनगुनाने लगे थे—

एक टकारी ए राज चाकरी···
लाख रुपिया री घर री नार···
भवर भल चढ़जौ राज चाकरी···

और उन्होने मुझे आलिंगन मे जकड़ लिया था तथा आसू पौछते हुए कहा था—इतना दुखी होने की क्या बात है? अबकी बार मैं शीघ्र ही छुट्टी पर आऊंगा और यदि नही आ सका तो नौ महीने बाद तो घर मे बेबी आ जाएगा।

पर उस बात को भी आज पूरा वर्ष-भर होने को आया। कहा बेबी और कहा उसके बाप?

राजो एक निश्वास छोड़कर खड़ी हो गई। बाहर कोई बोल रहा था। शायद जवरू का मास्टर जेठजी से बातचीत कर रहा था।···इस बार जग बहुत जोर से छिड़ी है। असख्य चीनी चींटियो की तरह हमारी सरहद पर चढ़ आए है। परन्तु हमारे जवानो के हौसले बहुत बुलन्द हैं। वे बड़ी दिलेरी से उनका सामना कर रहे हैं। दुश्मन को गाजर-मूली की तरह काट रहे हैं···

राजो की नस-नस मे बिजली दौड़ गई। कुछ कर गुजरने को मन मचलने लगा। आगन में जाकर दही मथने लगी तो भी उत्तेजना समाप्त नही हुई।

झरड़···मरड़! झरड़···मरड़।
दुश्मन···आया! झरड़···मरड़।
बढ़ो···जवानो! झरड़···मरड़।
काटके···फेको! झरड़···मरड़।

एक जोर की झाट लगी और जमे हुए दही का बड़ा-सा लौंदा मटके मे उछलकर आगन मे छच्च आ गिरा।

—हूं, कम्बी क्या है बहू ? मथनी जरा धीरे चला, कहीं मटका फोड़ दे
रसोई से मांजी की आवाज आई ।

घरड़···मरड़ ! मथनी की गति कुछ धीमी पड़ गई । वह सोचने लगी—
उसे भी मोर्चे पर जाने का अवसर मिल जाए, [illegible] । गांव में ए
साथ राजस्थान का नाम रोशन कर दे ।···दुश्मन सामने पड़ जाए तो न तलवार
की जरूरत है और न कारतूस की । उसे अपनी भुजाओं के बल का भरोसा है
भरोसा है, शिराओं में प्रवाहित वीर पुरखों के पवित्र खून का । दो तगड़े
जवानों की गर्दनें यदि उसके पंजों की जकड़ में आ जायें तो वह उन्हें हिलने भी न
देगी, शिशु की भांति मसलकर फेंक देगी । फिर तीसरा आ जाए तो पलक ए
मारने का काम है । उठकर पानी भी मांग ले, तो उसके नाम पर लानत भेजना
···यदि आदमी मोर्चे पर लड़ने के लिए जा सकते हैं, तो औरतें क्यों नहीं ज
सकतीं ? वे उनसे किस बात में कम हैं ? वह अकेली बीसों दुश्मनों से निपटने की
क्षमता रखती है । मजाल है जो मेरी मौजूदगी में दुश्मन हमारी धरती पर कदम
भी रख दे, पैर अलग करके रख दूं, हरामखोरों के ।

घरड़···मरड़ !

एक जोर की झटका लगी और तड़ंद करती रस्सी टूट गई । मथनी एक ओर
जा टकराई और मटका फूटते-फूटते बचा ।

—तुझे हो क्या गया है री ? काम नहीं करना है तो सीधे-सीधे मना क्यों
नहीं कर देती, यूं नुकसान क्यों करती है ? इस बार मांजी जोर से चिल्लाईं—
अच्छा दही मथा बहूरानी ने ! बाप के घर में बकरी भी पाली थी ? पधारो अब
यहां से—तालाब से पानी भर लाओ । पर मटके का जरा ध्यान रखना ! देखती
हूं आज तेरा मन ठिकाने नहीं है ।

राजो मटका लेकर तालाब की ओर चली तो सूरज आकाश में बांस भर चढ़ आया
था । गांव की सारी गायें इकट्ठी हो गई थीं पर ग्वाला अभी उन्हें घेरे खड़ा था ।
वजह यह थी कि आज एक नये बैल की नाक फाड़कर उसे नाथना था । इसी कार्य
को सम्पन्न करने के लिए जवानों की भीड़ लगी थी । नर्म सूत की बनी नाथें
(नकेलें) जिनके सिरों को मोर पांख की तुगियों से बांधकर सुकीला बनाया गया
था, बिलकुल तैयार रक्खी थीं । परन्तु उस बलिष्ठ बैल को काबू में करके नाथना
अति दुष्कर कार्य था । इस प्रयत्न में दो-चार जवान पहले ही पटकी खा चुके थे
अतः सम्पूर्ण कुशलता से उसे दबोचने का प्रयत्न जारी था ।

जवान मजबूत रस्सों की सहायता से बैलों को जकड़कर काबू में करना चाहते

थे। अत: इस कार्य में वे प्रयत्नरत थे। इतने ही में राजो पानी से भरा मटका सिर पर उठाये तालाब से वापस लौटी। बिफरा हुआ बिगड़ैल बैल उसे सामने पाकर उस पर ही टूट पड़ा। राजो को ऐसा महसूस हुआ मानो वह मोर्चे पर खड़ी है और सामने से दुश्मन आक्रमण कर रहा है। पलक झपकते उसने स्वयं को इस विकट स्थिति का सामना करने के लिए तैयार कर लिया, और मटका एक ओर उछालकर वह साक्षात् मौत से आ भिड़ी !

बैल के दोनों कानों को उसने अपने मजबूत पंजों में इस कदर जकड़ लिया जैसे सड़ासी में सांप। बैल अपने सम्पूर्ण वेग से आक्रमण करने का प्रयत्न करता रहा, परन्तु टस-से-मस नहीं हो सका। अन्त में हारकर गोबर करने लगा—थच्च '''थच्च !

दूर खड़े तमाशा देखने वाले जवानों को राजो ने ललकार कर कहा—"वाह रे वीर जवानो ! बड़े मर्द बने फिरते हो ! पहिले मेरे चूनड़ी का पल्ला तो थोड़ा सिर पर डाल दो, फिर निडर होकर आ जाओ, इससे तो मैं हिलने भी नहीं दूंगी।

जवान सिर नीचा कर दौड़ते हुए आए और बैल को खड़े-खड़े ही नाथ दिया।

इस घटना के पश्चात् राजो की ताकत की चर्चा गांव में ही क्या आसपास के सम्पूर्ण इलाके में होने लगी। साथियों ने इस घटना का सम्पूर्ण ब्यौरा तेजा को पत्र में लिख भेजा। देश की उत्तरी सीमा पर घुटनों-घुटनों तक बर्फ में खड़े-खड़े, उसने जब वह पत्र पढ़ा तो उसकी रग-रग में उष्णता व्याप्त हो गई और छाती फूलकर ड्योढ़ी हो गई। वह सोचने लगा—राजो फूल-सी कोमल और वज्र-सी कठोर ! चांदनी-सी शीतल और चंडिका-सी विकराल ! यदि आज वह भी उसके साथ कंधा भिड़ाकर सीमा रक्षार्थ यहां तैनात होती तो कितना मजा आता।

इतने में उत्तर की ओर से कुछ खुड़का सुनाई दिया और उसने दूरबीन पर नजर टिकाकर राइफल मजबूती से पकड़ ली। □

उपलब्धि

अरनी रॉबर्ट्स

अस्पताल की बिल्डिंग का नाम है—'गरिमा'। कितना आकर्षक नाम है! यह अस्पताल बनवाकर दिया है जीवन बाबू ने। उनका पूरा नाम है डॉ॰ जीवनलाल। पूरे तीन लाख तो जीवन बाबू ने ही लगाए हैं, बाकी लोगों ने चंदा दिया है इस कार्य के लिए दिल खोलकर···और क्यों न देते, काम भी तो पुण्य का था। पर धन्य हैं जीवन बाबू, जिन्होंने अपना सर्वस्व दे दिया—जायदाद से मिला पैसा और डॉक्टरी के पेशे से कमाया सारा रुपया। इस कलयुग में ऐसा देवता पुरुष! सहसा विश्वास नहीं होता है, पर यह सच है इसलिए विश्वास न करने की कोई गुंजाइश नहीं है। यूं जिन्दगी भर दिया ही है जीवन बाबू ने। किसी गरीब की आंखों में आंसू नहीं देखे गए उनसे। जब डॉक्टरी पढ़कर आए थे, तो लगा था लोगों को कि वे जमीन पर पांव रखकर नहीं चलेंगे। हुआ भी कुछ ऐसा था शुरू में।

उस वक्त नितांत गांव ही था यह कनकपुरा। चार-पांच सौ कच्चे-पक्के मकानों की आबादी वाला गांव—जहां खेतिहर लोगों का ही आधिक्य था। डॉक्टर साहब के पिता सूद पर पैसा देते थे। खासा पैसा था पिता के पास। तीन लड़कों में लायक मंझले वाले जीवन बाबू ही निकले थे। पिता ने उनकी इच्छानुसार उन्हें डॉक्टरी पढ़ने पूना भेज दिया था। वहीं के मेडिकल कॉलेज में ही उनका एडमिशन हुआ था।

जिस दिन गांव में जीवन बाबू डॉक्टर बनकर आए थे, उनका रुतबा देखते ही बनता था। सीधे मुंह बात नहीं करते थे। दस दिन में ही उन्होंने अपने घर के सामने वाले भाग में डिस्पेंसरी जमा ली थी। फीस भी उन्होंने कम नहीं रखी थी—पूरे दस रुपये लेते थे वे। उस वक्त दस रुपये बड़ी राशि हुआ करती थी। जिसके पास फीस के पैसे नहीं होते थे, उसे जीवन बाबू दरवाजे पर भी खड़ा नहीं रहने देते थे। साफ-साफ कह देते थे—"अरे घोड़ा घास से यारी करेगा तो क्या खाकर जिंदा रहेगा। हजारों रुपया लगाया है पिताजी ने मुझे डॉक्टर बनाने में।

अब भला मैं अच्छी फीस क्यों न लूं ?" इलाज उनका बहुत अच्छा था। जल्दी ही उनकी ख्याति आसपास के अन्य कस्बों और गांवों में फैल गई थी। फिर तो उन्हें खाना खाने तक का समय नहीं मिलता था। बस, एक ही धुन थी—"पैसा, पैसा और पैसा..."

शायद जीवन बाबू की जिन्दगी में पैसे का मोह इसी प्रकार रहता, अगर एक घटना ने उनके जीवन में उथल-पुथल मचाकर उनके जमीर को न जगा दिया होता तो। हुआ यह था, कि पास के खमीरपुर गांव से एक किसान और उसकी पत्नी, दिसम्बर माह की कड़ाके की सरदी की एक शाम अपने पांच वर्षीय पुत्र को उनकी डिस्पेंसरी में लेकर आए थे। लड़के को डबल निमोनिया था। बड़ी मुश्किल से सांस ले पा रहा था वह। जीवन बाबू ने उसका मुआयना किया था और दवाइयों तथा इंजेक्शनों आदि के तीस रुपये मांगे थे। किसान दम्पत्ति बेहद गरीब थे। दस रुपये का मुड़ा-तुड़ा नोट और कुछ चिल्लर जेब से निकालकर किसान ने जीवन बाबू के सामने रख दिये थे। डॉक्टर की तनी भृकुटी देखकर किसान ने अपनी पगड़ी उनके पांवों में रखकर गिड़गिड़ाते हुए कहा था—"भगवान की सौगन्ध खाकर कहता हूं डॉक्टर साहब इन पैसों के अलावा फूटी कौड़ी भी मेरे पास नहीं है। अभी ये ले लो डॉक्टर बाबू..."फसल कटने पर एक बोरी अनाज के साथ आपका पैसा चुका दूंगा—मेरे मंगू को अच्छा कर दो। मेरा एक ही बच्चा है।"

आग-बबूला हो उठे थे जीवन बाबू। धक्के देकर उसी समय किसान और उसकी पत्नी को चबूतरे से उतार दिया था और बड़बड़ाते हुए डिस्पेंसरी में चल दिए थे।

सुबह उठकर जैसे ही जीवन बाबू घर के बाहर नीम की दातौन तोड़ने के लिए आए तो उनकी दृष्टि पेड़ के नीचे बैठे किसान दम्पत्ति पर पड़ी। वे पत्थर के दो बुतों की तरह बैठे हुए थे और गोद में उनके बच्चे की अकड़ी हुई देह थी। उस दृश्य को देखकर जड़ हो गए थे जीवन बाबू। उन्होंने भागकर उस बच्चे को संभाला था पर वह मर चुका था। उस दिन उन्हें इतनी आत्मग्लानि हुई थी कि अपने कमरे में जाकर फूट-फूटकर रो उठे थे वे। तीन दिन तक अपने को उस कमरे में कैद कर लिया था और भूखे-प्यासे रहे थे। और तीन बाद जब वे बाहर आए, तो एक नए जीवन बाबू थे।

डॉक्टरी पेशे को पैसा कमाने का माध्यम समझने वाले जीवन बाबू का दृष्टिकोण अब पूर्णतः बदल चुका था। घर और गांव के सब लोग इस आकस्मिक परिवर्तन पर आश्चर्यचकित थे, और सबसे अधिक हक्के-बक्के थे उनके पिता मदन लाल, जो सोच बैठे थे कि उनका लायक बेटा अब पैसा ढालने वाली टकसाल साबित होगा। घंटों समझाया था उन्होंने जीवन बाबू को—प्यार से, दुलार से और

नाराजगी से भी। वे एक ही बात कहते थे—"जीवन तू ही मेरा एकमात्र लाड़
बेटा है। मैं यह नहीं कहता कि तू दीन-दुःखियों की सेवा मत कर, लेकि
भावुकता में आकर आती हुई लक्ष्मी का तू अनादर करे, यह कहां की बुद्धिमा
है? देख शहरों और कस्बों के डॉक्टरों को, बगैर पैसे के वे बात तक नहीं करते
पचास रुपये तो उनसे मिलने की फीस है, बाकी इलाज और दवाइयों का पै
अलग। मेरा कहना मान ले जीवन, भावुकता से नहीं अक्ल से काम ले।"

जीवन बाबू का यही उत्तर था—"मेरी आंखें खुल गई हैं, उन्हें फिर से मूं
लेने पर मजबूर मत करिए। मैं इस बात का मन बना चुका हूं कि मैं उन लोगों क
डॉक्टर बनकर जिऊंगा जो पैसे के अभाव में कीड़ों की तरह दम तोड़ देते हैं।"

जीवन बाबू गरीबों के प्रति समर्पित हो चुके थे। उनके पिता ने आखिर
उनको अपने हाल पर छोड़ दिया था। हां, इस होनहार बेटे की पढ़ाई-लिखाई पर
जो उनका खर्चा आया था वह उन्होंने मय सूद के वसूल कर ही लिया था—
जीवन बाबू का विवाह एक धनाढ्य सम्पन्न परिवार की आधुनिका युवती से
करके।

गरिमा—यही नाम था उस युवती का, जो जीवन बाबू की पत्नी बनी थी।
गरिमा बेहद सुंदर युवती थी और शायद रूप और बड़े सम्पन्न परिवार की लड़की
होने का ही घमंड उसमें था। पिता स्टील फैक्ट्री के मालिक थे। गरिमा बोर्डिंग में
रहकर पढ़ी थी, और सम्भवतः इसी कारण वह स्वच्छंद विचारों वाली आधुनिक
युवती थी। दिन भर सजना, संवरना, टेप पर गाने सुनना या हिंदी-अंग्रेजी के
डिटेक्टिव नावेल पढ़ना। आए दिन गरिमा के मित्र एवं सहेलियां घर पर आते
रहते थे। जीवन बाबू को अपनी डिस्पेंसरी और मरीजों से ही फुरसत नहीं मिलती
थी। गरिमा चाहती थी वे भी उसके मित्रों और सहेलियों को एन्टरटेन करें। पर
जीवन बाबू ने स्पष्ट कह दिया था कि उनके पास इन सब कामों के लिए वक्त
नहीं है।

गरिमा की एक सहेली ने एक दिन कह दिया था—"यार गरिमा तेरी तो
लाइफ स्पॉइल्ड हो गई है। अच्छे पत्थर से तेरा विवाह हुआ है। लाइफ के प्रति
कोई आकर्षण ही नहीं इनमें तो। हो गई तेरी तो छुट्टी।"

सहेली की बात यहीं गहरे चुभ गई थी गरिमा के मन में। उसने ठान लिया
था, या तो वह अपने पति को एक माह के लिए काश्मीर लेकर जाएगी अन्यथा वह
उस घर से ही चली जायेगी।

उस रात देर से ही लौटे थे जीवन बाबू। पास के गांव में एक सीरियस पेशेंट
को देखने चले गए थे। लौटते में वर्षा में भीग गए थे। कपड़ों में कीचड़ व धब्बे
लग गये थे। न तो उनके आने पर गरिमा ने टूथपेस्ट और तुर्की-तौलिया ही
लाकर दिया और न ही खाना गरम करके।

. . . . पाप नाराज हे क्या हमसे ?" पूछा था जीवन
बू ने। सुनते ही बिफर उठी थी गरिमा—"पाच माह हो गए हैं हमारी शादी को
कन इस घर की चारदीवारी के बाहर नहीं निकले हैं साथ-साथ। सारी
लिया और मित्र आते हैं यहां पर, मैं किसी के यहां नहीं जाती हूं। एक तो यह
ा शहर से चालीस किलोमीटर दूर है। आपको तो मरीजों से ही फुरसत नहीं
लती। क्या कमा पाते हैं? मुश्किल से डेढ़ सौ रुपया रोज। शहर मे डॉक्टर
ारों कमाते हैं रोज।"

गम्भीर स्वर में बोले डॉक्टर—"देखो गरिमा मैं एक डॉक्टर हूं, इसलिए
गांव मे रहना बहुत जरूरी है। क्या पता कौन कब आ जाये। पैसा कमाना
ध्येय नहीं है। हमें दाल-रोटी मिल जाती है इसी में सुख है।"

गरिमा मुह बिचराकर बोली थी—"देखिए ... मैं कुछ सुनना नहीं चाहती।
शाम छः बजे डिस्पेंसरी बंद कर दिया कीजिए ... और हां, फिलहाल मेरे साथ
ो काश्मीर चलना है। बताइये कब चलेंगे तुम?"

झुंझला उठे थे जीवन बाबू—"कैसी बातें कर रही हो? भला मरीजों को
के मैं कहां जा सकता हूं सैर-सपाटों के लिए?"

"यानी आप मुझसे प्रेम नहीं करते हैं।"

"तुमसे प्रेम क्यों करूंगा—तुम मेरी पत्नी हो।"

व्यग्य से बोली थी गरिमा—"सिर्फ नाम मात्र की पत्नी। आपको क्या
ा मेरी इच्छाओं से और जरूरतों से। आपको मतलब है मरीजों और
क से। उन गंवारों से जिनके पास इलाज कराने को पैसा तक नहीं है। क्यों
आपने मुझसे शादी? क्यों इसी तरह घुटकर मार डालने के लिए?"

"गरिमाऽऽऽ!" चीख उठे थे डॉक्टर। "मैं अपने उसूलों को छोड़कर तुम्हारी
ा इच्छाओं के साथ समझौता नहीं कर सकता। तुम्हें मेरे साथ मेरे जैसा
ही जीना पड़ेगा—सैर-सपाटे, फिल्में, क्लब, डांस ... ये सब शादी के बाद
ो का हिस्सा नहीं रहते। अब तुम इस घर की बहू हो ... गृह लक्ष्मी हो।"

और यह सब मेरी जिन्दगी का अहम हिस्सा रहे हैं डॉक्टर और रहेंगे। मैं
ो बरबाद नहीं कर सकती उन जाहिलों की तरह, जो गांव को ही अपना
समझते हैं।"

ह कहकर पांव पटकती हुई गरिमा बैडरूम मे चली गई थी और फटाक् से
ा बंद कर लिया था। जीवन बाबू अवाक् से देखते रह गए थे बंद दरवाजे
न्हें लगा था, जैसे सब कुछ छिन्न-भिन्न हो गया था। और अगले दिन
ा से वापस आने पर उन्होंने पाया था कि गरिमा घर छोड़कर जा चुकी थी।
छोड़ गई थी कि उसे ढूंढ़ने की कोशिश नहीं की जाए। अपने सारे जेवर वह
गई थी। बहुत ढूंढ़ा था जीवन बाबू ने गरिमा को—उसके सब संबंधियों

में, गर्भिणी थी। इन्तज़ार भी किये थे, पर गरिमा का कुछ पता नहीं चल पा[illegible]। आने के [illegible] अन्दर वे पूरी तरह समर्पित हो गए वे दुखियों और रोगियों के प्रति। [illegible] गांव के [illegible] की आवश्यकता थी उन्हें। उनकी ख्याति दूर-दूर तक और बड़े शहरों तक पहुंच चुकी थी। कई सेठ [illegible] उनके अस्पताल के लिए डोनेशन भी देते थे। [illegible] होने लगी थी। इन वर्षों के अन्तराल में उन्होंने क्लिनिक की जगह अस्पताल बनवा लिया था। अब उनके पास दो डाक्टर्स, तीन नर्सेज, दो कम्पाउंडर्स, दो ऑफिस के बाबू और सहायक कर्मचारी थे। उनके स्टाफ में बढ़ोतरी होती जा रही थी। एक भी दिन ऐसा नहीं जाता था, जब जीवन बाबू गरिमा को याद न करते हों। वे सोचते थे वह कहां होगी, जाने किस हाल में होगी। अपने अनदेखे बच्चे को देखने की चाहत भी उनके हृदय में थी। घर छोड़ने से पूर्व गरिमा गर्भवती थी। रात-रात भर वे सो नहीं पाते थे कई बार। हर रोज उन्हें इन्तजार रहता था गरिमा के लौट आने का। कोई स्त्री अस्पताल में बच्चा लेकर आती दिखाई देती, तो उन्हें एक पल को आभास होता कि गरिमा आ रही है—पर फिर वे अपनी सोच पर हंस पड़ते कि क्या बच्चा अभी छोटा-सा ही होगा। कुछ देर विचारों में डूबे रहते वे, फिर निःश्वास छोड़कर काम में लग जाते। दिन, महीने और कई वर्ष बीत गए, लेकिन गरिमा नहीं आई। गरिमा के अभाव ने उन्हें भीतर-ही-भीतर घुन के समान खा डाला था। अपने बच्चे से मिलने की तड़प उन्हें पूरी-पूरी रात जगाकर करवटें बदलने को मजबूर कर देती थी।

सर्दियों की रात थी। अस्पताल में राउंड लेकर लौटे ही थे जीवन बाबू कि एक व्यक्ति को उनकी प्रतीक्षा करते पाया। नमस्ते का आदान-प्रदान हुआ। आगंतुक व्यापारी-सा प्रतीत होता था। उसके शरीर पर कीमती कपड़े थे।

"जीवन बाबू आपने पहचाना मुझे ?"

"कौन हैं आप ?" गौर से देखा उन्होंने और पहचान गए—"अरे श्यामलाल तुम ? बहुत बदल गए हो। तुम लोग तो आसाम की तरफ चले गए थे।"

"हां जीवन बाबू हम व्यापार के सिलसिले में इस गांव से चले गए थे आसाम। चाय का व्यापार है हमारा। अच्छे व्यवस्थित हो गए हैं उधर। इधर भतीजी की शादी में आना हुआ है। आपने तो अपने कस्बे को इस अस्पताल के कारण खूब प्रसिद्ध कर दिया है। आपसे एक बात कहनी थी···कलकत्ता में मेरी मुलाकात आपकी पत्नी गरिमाजी से हुई थी।"

"गरिमा···!" चौंक पड़े जीवन बाबू—"कहां है गरिमा···श्यामलाल जल्दी बताओ ! तुम फरिश्ता बनकर आये हो मेरे लिए। मैं पिछले पन्द्रह वर्षों से तड़प रहा हूं उसके लिए।"

श्यामलाल देखते रह गए उनकी ओर। कंठ मे कुछ फस गया-सा प्रतीत हुआ। किसी तरह बोले—"वे नही रही इस संसार में। मैं मिला था, तब वे बहुत बीमार थी। बस आपको याद कर रही थी। उन्होंने कहा था—"उन जैसे देवता पुरुष के सामने किस मुह से जाऊं।" एक बच्चा भी हुआ था उनके पर अधिक जी नहीं सका था, कमजोर बहुत था।"

बच्चे की तरह बिलख-बिलखकर रो उठे जीवन बाबू—"गरिमा···तुम मुझे अकेला छोड़कर चली गई। कम-से-कम एक बार तो आकर देखा होता मुझे। इलाज के अभाव में तुमने दम तोड़ा—काश, तुम जान पाती कि कितना बड़ा अस्पताल बनवाया है मैंने। बच्चा भी नही रहा! मेरी गरिमा भी चली गई!"

जीवन बाबू रोते रहे। श्यामलाल उन्हें सांत्वना देने का असफल प्रयास कर रहे थे। जिन्दगी भर संघर्षरत रहने वाले जीवन बाबू किस बुरी तरह टूट गए थे।

अगले दिन जीवन बाबू अस्पताल नहीं गए। घर में ही बिस्तर मे पड़े रहे। नौकर खाना लाया तो जीवन बाबू ने मना कर दिया। सबको पता चल गया था कि जीवन बाबू पत्नी की मृत्यु से शोकाकुल थे। अस्पताल का स्टॉफ संवेदना प्रकट करने आया तो बुत की तरह बैठे रहे।

डॉक्टर रवि बोले—"हमें बेहद दुख है सर···।"

शोक मे डूबे जीवन बाबू आंसुओं मे फूट पड़े—"डॉक्टर रवि, मैं जीवन भर आदर्शों के लिए जीया हूं। मैंने अपना सब कुछ देकर अस्पताल की बिल्डिंग बनवाई, इसे ख्याति दी, हजारों लोगों का सफल इलाज किया है पर मुझे क्या मिला? कुछ नहीं। गरिमा संसार से विदा हो गई मुझसे मिले बगैर। अब मैं किसके लिए इतना परेशान होऊं?" कहते हुए उनकी मुट्ठियां भिंच गईं। अस्पताल का स्टॉफ सन्नाटे में आ गया। सब ऐसे हो गए जैसे सांप सूंघ गया हो। हो सकता है जीवन बाबू ऐसा ही करें। वे अपनी धुन के पक्के हैं। सबको लगा—अब सब कुछ बिखरने वाला है···टूटकर। भावी आशंका से घिरे हुए, वे लोग जीवन बाबू से विदा लेकर आ गए।

रात ग्यारह बजे थे। एक बच्ची को खून की उल्टियां हुई थीं। सीरियस केस था। डॉ॰ रवि और डॉ॰ सुरेश लड़की को मेडिकल ट्रीटमेंट दे रहे थे, पर केस संभल नहीं रहा था। तुरंत आप्रेशन की आवश्यकता थी। आप्रेशन केवल जीवन बाबू ही करते थे। पर उन्होंने स्पष्ट कह दिया था कि उन्हें बिल्कुल डिस्टर्ब न किया जाए। दो दिन होने को आए थे, उन्होंने अस्पताल की ओर रुख भी नहीं किया था।

"क्या किया जाए? आप्रेशन के बगैर लड़की का बचना मुश्किल है।" डॉक्टर रवि ने पूछा।

"ऐसी हालत में बाहर के अस्पताल में भी नहीं भेजा जा सकता। जीवन बाबू

के साथ चलने के अलावा और रास्ता भी क्या है।" डॉ० सुरेश बोले।

दोनों इंतजार करते जीवन बाबू के घर तक। कॉलबेल बजी। जीवन बाबू ने दरवाजा खोला। गम्भीर स्वर में बोल उठे—"मैं कहता था न···मुझे किसी की जरूरत··· मैं किसी से मिलना नहीं चाहता!"

"सर···!" डॉ० रवि बोले।

"क्या बात है?"

"बहुत सीरियस केस है। मासूम, फूल-सी बच्ची है—मौत की घड़ियां गिन रही है। आपरेशन जरूरी है। सब तैयारी कर ली है। आप चलिए सर···वरना वह दम तोड़ देगी। आप उसे बचा सकते हैं।" डॉ० रवि की आंखों में आंसू थे।

जीवन बाबू का तना हुआ चेहरा सामान्य होने लगा। कुछ देर वैसे ही खड़े रहे थे, जैसे अपने विचारों से लड़ रहे हों। फिर पलभर में उन्होंने कपड़े चेंज किए, स्टेथस्कोप लिया, और चल पड़े अस्पताल की ओर। चलते हुए वे कहने लगे—"बहुत कठोर बनने की कोशिश की···पर नहीं··· आखिर तो डॉक्टर हूं। मेरा सब कुछ लुट गया तो क्या हुआ? क्या उसका बदला मैं बीमारों, गरीबों और असहायों से लूं। नहीं मेरा नाम ही जीवन है—और फिर डॉक्टर का काम जीवन देना होता है। फिर मैं कौन होता हूं, लोगों को मौत के मुंह में धकेलने वाला। चलो जल्दी करो! बच्ची बहुत तकलीफ में होगी। दूसरों का जीवन बचाना ही मेरी उपलब्धि है।" यह कहकर वे तेज कदमों से बढ़ने लगे अस्पताल की ओर। कुछ देर पहले तक व्याप्त टूटन, हताशा और तनाव अब उनके चेहरे पर नहीं था—अब वे डॉक्टर थे—कर्त्तव्यपरायण डॉक्टर। उनके पीछे आ रहे डॉक्टर रवि और डॉ० सुरेश आश्चर्यचकित थे जीवन बाबू को देखकर। उन्हें वे इन्सान के रूप में किसी फरिश्ते से कम नहीं लग रहे थे। □

रिश्ते

उषा किरण जैन

राम मोहन दर्द से कराह उठा। जरा सा हिलते ही लगता है जैसे कोई तेज आरी अन्दर तक चीर गई है। आपरेशन के बाद होश आते ही एक बार तो उसे आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता हुई थी। क्या वह सचमुच जिन्दा है? इससे पहले कि वह अपने चारों ओर के परिवेश से परिचित हो पाता उसकी बोझिल पलकें आखों पर अवगुंठन डाल चुकी थीं। कुछ मिनटों तक वह आखें बन्द ही किए रहा। थोड़ी कोशिश के बाद पलकों का अवगुण्ठन हटाने में सफल हो गया। लेकिन इस बार भी वह अधिक देर तक आखें खोले नहीं रह सका। बोझिल पलकों के कारण आखें अपने आप बन्द हो गयीं। तीन-चार बार की इस प्रक्रिया के बाद अब वह पूर्ण रूप से आखें खोलने में समर्थ हो चुका था।

इधर-उधर नजर दौड़ाकर उसने स्थिति का जायजा लिया। बगल वाले बैड पर एक बूढ़ा मरीज बुरी तरह कराह रहा था। पलग के दायें-बायें दो स्टैण्ड्स पर ग्लूकोज और खून की बोतलें लटक रही थीं। उसके दायें हाथ में कुछ चिनचिनाहट सी महसूस हुई। देखा उसे भी ग्लूकोज की बोतल चढ़ाई जा रही थी। सामने दूसरे बैड पर भी एक बूढ़ा लेटा था। शायद अभी आपरेशन हुआ था। सामने तीसरे बैड पर लेटे मरीज की नाक में नली चढ़ाई जा रही थी। मरीज पर शायद अभी भी मार्फिया का असर था। फिर भी ट्रेनिंग पीरियड का डाक्टर अपने अभ्यस्त हाथों से ज्यों ही नली घुमाने की चेष्टा करता, वह चीख उठता बस करो डॉक्टर साहब बस करो! उसका जी कैसा-कैसा होने लगा? जल्लाद हैं यहां सब ये डाक्टर! मैं जान से मार दूगा! हट साले'''हट

बचाओ—डॉक्टर साहब बचाओ, छोड़ दो मुझे छोड़ दो! शायद कोई आपरेटेड मरीज होश में आने से पहले चीख रहा था। उसने बायी ओर नजरें घुमाई अविनाश बैठा था। उसने राहत की सास ली।

इस बीच डॉ० अग्रवाल आकर अपनी मधुर मुस्कान से वार्ड के सभी आपरेटेड

मरीजों के हाल पूछ चुके थे। उसे आशा थी अविनाश जरूर डॉ० अग्रवाल से भी उसके बारे मे कुछ पूछेगा। डॉ० अग्रवाल के आने पर भी अविनाश चुपचाप बैठा रहा, तो उसे एक अजीब तरह की कोफ्त हुई।

शाम होने के साथ ही पूरे वार्ड में एक अजीब मनहूसियत और उदासी के साये तैर आए थे। 5 बजे तक फिर भी मिलने-जुलने वालों की कुछ चहल पहल थी। उसके बाद तो जैसे वार्ड के समूचे अस्तित्व को एक भयानक और खौफनाक सन्नाटा लीलने लगा था। सन्नाटे को भंग करती थी, रह-रहकर मरीजों के जोर से चीखने-चिल्लाने की आवाज।

दर्द के मारे उसे रात भर नींद नहीं आई थी। तीनों बेटों में से एक कोई भी रात को अस्पताल मे उसके पास रुकने को तैयार न था। बाहर जाते वक्त अनन्त द्वारा धीरे से कहा गया वाक्य—"कौन सोये इस रोगी बूढ़े के पास" उसे अन्दर तक मथ गया था। उसने क्या नहीं किया इनके लिए। अपनी पूरी जिन्दगी होम देने के बावजूद भी ये सब नालायक निकल गए। देर तक नींद न आने के कारण, उसके पास सोये नौकर ने कम्पाउण्डर को बुलवाया और नींद का इन्जेक्शन देने के बाद ही उसे नींद आ पाई।

सुबह लगा जाने कितने दिनों बाद सुबह हुई है? नौकर बाहर से लाकर चाय पिला गया था। बैडशीट बदलते समय बड़ी मुश्किल से वह नौकर के सहारे खड़ा हो पाया था।

नौ बजने के साथ ही नौकर चला गया था। उसके पास अब कोई नहीं था। उसने आस-पास नजर डाली हर बैड के पास एक-दो या इससे भी अधिक अटेण्डेण्ट बैठे थे। इस भरे वार्ड में उसे एक अजीब तरह का अकेलापन महसूस होने लगा। सिर्फ उसी के पास कोई अटेण्डेण्ड नही था।

बाहर, सब लोग बाहर निकल जाओ। वार्ड बॉय चीख रहा था। बड़े साहब राउंड पर आने वाले हैं। मरीज के पास कोई नही रहेगा। कुछ चले गए। कुछ घिघियाने लगे तो वार्ड बॉय ने धक्के देकर बाहर निकाल दिया। अब पूरे वार्ड में किसी मरीज के पास अटेण्डेण्ट न देखकर उसने राहत की सांस ली। बड़े साहब राउंड पर आ गए। उनके पीछे थी पूरी फौज चमचे डाक्टर्स की। इण्टर्नशिप के डाक्टर्स की। कुछेक बैड्स के पास चमचे चन्द एक सेकेंड रुक कर राउंड की औपचारिकता पूरी कर चुके थे। बड़े डॉक्टर के पास से गुजरने पर उसने हाथ जोड़ दिए थे और बड़े साहब आश्वासनपूर्ण एक मुस्कराहट उसकी ओर फेंककर चलते बने थे।

उसके बाद एक अन्तहीन लम्बी दुपहर का सिलसिला। कहते हैं सर्दियों के दिन

बहुत छोटे होते हैं और दोपहर तो बहुत ही छोटी होती है। पता नहीं लोग सर्दियों के दिन को किस पैमाने से मापते हैं। यहां तो यह दिन खत्म ही नहीं हो रहा। उसे तलब लगी। इधर-उधर देखकर आवाज दी। किसी ने नहीं सुनी और कोई सुने भी क्यों? आखिर सरकारी कर्मचारी हैं? तलब को रोकना दुश्वार हो गया। स्वयं यूरीनल जाने के लिए जैसे-तैसे उठ गया। खड़े होते ही चक्कर खाकर गिर गया।

इधर-उधर से कुछ लोग आ गए। सहारा देकर उठाया और पलंग पर लिटा दिया। बगल के बेड पर से अटेन्डेंट ने यूरीनल पॉट लाकर रख दिया।

पड़े-पड़े आपरेशन से पहली रात के कुछ दिन आकार लेने लगे। न जाने कैसी बेचैनी और घबराहट उस पर छाई थी। आपरेशन के बहुत से केस डाक्टरों की लापरवाही के कारण बिगड़ने के किस्से सुने थे। सोच रहा था आपरेशन के बाद बचेगा नहीं। उस रात कितना रोका था नीलू को अपने पास रह जाने के लिए। नीलू ने बुरी तरह से झिड़क दिया था—"रात को यहां आपको कोई खा तो नहीं जाएगा।" नीलू के माध्यम से ही उसे डॉक्टर को दिखाया गया था। डॉक्टर ने भर्ती होने के लिए दुपहर से पहले बुलाया था। लेकिन दुपहर के पहले किसी भी बेटे को फुर्सत नहीं मिल पाई थी। जब वह नीलू के साथ शाम को अस्पताल पहुंचा तो डॉ॰ अग्रवाल नहीं मिल पाते थे। ड्यूटी पर तैनात कम्पाउडर कुछ भी निश्चित रूप से नहीं बता रहा था कि आपरेशन होगा या नहीं। नीलू उसे इस अनिश्चय की स्थिति में ही छोड़कर चला गया था। उसका दिल और अधिक बेचैन हो रहा था। वह रात भर करवटें बदलता रहा था। सुबह जैसे-तैसे आपरेशन थियेटर के पास डॉ॰ अग्रवाल मिल गए थे, और सूची में नाम न होने के बावजूद भी आपरेशन हो गया था।

आपरेशन के बाद तीसरा दिन था उसे बड़ी तेज भूख लग रही थी। डाक्टर ने खाने के लिए कल ही बता दिया था। लेकिन कल उसे नीलू की लापरवाही से दूध के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिल सका था। दूध उसे अस्पताल की ओर से ही मिल सकता था। लेकिन उसके बड़े बेटे को मंजूर नहीं था। खैर, दूध लेने के बाद एक बजे तक बड़ी बेसब्री से खाने का इंतजार करता रहा था। लेकिन परिणाम नकारात्मक ही रहा। भूख के मारे अन्तड़ियां ऐंठने लगीं। उसे ताज्जुब होता कि अस्पताल के इस भयानक और मनहूस वातावरण में भी कैसे इतनी तीव्र भूख लगती है। जैसे-तैसे अविनाश दो बजे खाना लेकर आया और उसे राहत मिली।

रात के सन्नाटे, भयंकर स्तब्धता और खामोशी को कभी-कभी मरीजों की दर्द भरी चीख और चीत्कार भंग कर देती थी। उसकी नींद उचट जाती और वह रात भर करवटें बदलता रहता। रोगियों की चीखें और चीत्कारें उसे और

अधिक गमगीन कर जाती। उसे लगता यह भी कहीं बीमार न करे।···

ओ भी बेड नं० दस, यह आवाज तीसरी बार वार्ड में गूंज चुकी थी। सहसा वह चौंक गया। उसे ही तो पुकार रहा है कोई? मन ही मन हंसा—यहां अस्पताल में एक-दूसरे को नाम से नहीं बेड की तरह नम्बरों से जानते हैं। उसका मन हुआ कि यहां से उठकर भाग जाए और किसी होटल में जाकर बैठ जाए, और खाता रहे सारी रात। छि यह कैसी कल्पना कर रहा है? उसने अपने आपको झिड़क दिया।

बगल के बेड वाले से इन दिनों परिचय घनिष्ठता में बदलने लगा है। सब उन्हें मास्टरजी कहते हैं। इन्टेस्टाइनल आब्सट्रक्शन का आपरेशन हुआ है। लड़का हमेशा इनके पास ही बैठा रहता है। एक ही लड़का है, लेकिन है योग्य और सेवाभावी। और ये सारे पांच-पांच होकर भी···

मास्टर जी का खाना सुबह नौ बजे ही आ जाता है। तब उसकी खाने की तलब जोरों पर होती है। वह टकटकी बांधे उनके खाने की ओर देखने लगता है।

"आप भी खाइये न।" मास्टर जी कहते हैं और वह, "नहीं! अभी भूख नहीं। आप खाइए।" कहता हुआ अपनी नजरों को मास्टर जी के खाने पर से हटा लेता है। जानता है मात्र चार फुलकियों में से मास्टर जी उसे क्या दे पाएंगे? कुछ क्षण बाद नजरें फिर चोरी से मास्टर जी के खाने की ओर चली जातीं। कैसे चटखारे ले-लेकर खा रहे हैं। उसका मन हुआ एक फुलका और साग मांग ले, पर किसी तरह नियंत्रण कर जाता है।

आज अस्पताल से छुट्टी मिलनी थी। डॉ० अग्रवाल टांके खोलने आ गए थे। टांके खोल देने के बाद हलका सा दबाव देने पर कुछ खून रिस आया था। घाव भर नहीं पाया था। अब शायद कई दिन तक छुट्टी न मिल सकेगी।

आज छुट्टी मिल ही जाएगी। यह सोचकर दोपहर में घर से न तो कोई मिलने आया था, और न ही खाना लेकर। राम मोहन दिन भर पड़ा रहा और झल्लाता रहा अपने ही बेटों पर। उसी कुढ़न और झल्लाहट के दौरान शाम हो आई थी। आज पांच नम्बर बेड के मरीज की हालत खराब है। नाक में नली डाली हुई है। मशीन लगाकर बार-बार गले में डाल रहे हैं और बलगम मशीन से खींच रहे हैं। तीन चार डाक्टर लगे हुए हैं शायद बचेगा नहीं।

"अरे मैं मरि गयो रे" पांच नम्बर चीखता है। चेहरे पर कष्ट और दारुण यातना के चिन्ह घिर आए हैं। राम मोहन को क्षण भर के लिए भूख बिल्कुल समाप्त प्राय. लगती है किन्तु दूसरे ही क्षण पेट में अन्तड़ियां ऐंठने लगती हैं। रात के आठ बज चले हैं। अनिल खाना लेकर आ जाता है। राम मोहन अनिल को

।था था, क्या यहाँ देखने के लिए ?" क्रोध में उसके मुख आगे और कोई शब्द ही निकलते हैं ?

निल कोई जवाब नहीं देता। सिर्फ सुनता रहता है।

राम मोहन जानता है। शुरू से ही अनिल जवाब नहीं देता है। अरे मरि ो रे, फिर नम्बर पाच की दारुण और पीडा भरी चीख वार्ड मे गूज उठी है। र मोहन उसकी ओर ध्यान दिए बिना ही खाने पर टूट पड़ता है। खाने के बाद वता है कैसी होती है यह भूख ? एक बार तो मौत की भयावहता को भी भुला । है और वह सोचता है—भूख, हा, यह भूख मौत से भी अधिक भयानक

या दिन आज फिर खाने का इन्तजार कर रहा है राम मोहन ! लगता है ल पर कल की डाट का कोई असर नही हुआ है। कल यद्यपि अनिल ने ह बजे खाना लाने का वादा कर लिया था, लेकिन बारह बज रहे हैं और तक नही आया। भूख से पेट मे ऐंठन होने लगी है। कुछेक बैड्स छोड़कर ाम सभी बैड्स के मरीज खाना खा रहे हैं ! कुछ को अभी मिल रहा है, ताल की ओर से। उसकी नजरें खाना देने वालो का पीछा कर रही हैं। वह ब्राने की ओर लालसा भरी नजरो से देखने लगता है। तेल से सने सब्जी के बर्तन को देखकर सोचता है, कितना तेल और मसाला डालते है ये लोग ? होंठों पर जीभ फिराकर वह स्वाद मनसूसता है। सोचा—माग ले। लेकिन ा है, ये देंगे नहीं। अस्पताल का कायदा है दूध या खाने मे कोई एक चीज। ध मिलता है यहा से और यहा खाना लेने मे अविनाश की प्रतिष्ठा का भी ाल है। डा० अग्रवाल का दोस्त जो ठहरा। बड़ा आदमी जो ठहरा। बाप भूखा मर सकता है पर अस्पताल से खाना कैसे ले सकता है ?
ेल बजे तक खाना नही आया। यहा आने की फुर्सत भी किसे है ? कितना ाया ? सारा जीवन होम दिया इनके लिए, और उसका प्रतिकार ये लोग ार से दे रहे हैं। खाने की आस मे उसकी सूनी आखें दरवाजे की ओर टिक ाश, आज अविनाश की मा जिन्दा होती। ☐

मुन्ने खां

बैजनाथ शर्मा

> कहो, कैसे हो ?
> आजकल कहाँ हो ?
> क्या सर्विस करते हो ?
> कितने पैसे मिलते हैं ?

गेहूं की ढेरी से गेहूं छानते हुए मैली-कुचैली, फटी-फटायी बनियान पहने हुए वह पल्लेदार एक के बाद एक मुझसे कई प्रश्न पूछ गया। लेकिन उसे उसके एक भी प्रश्न का उत्तर नहीं मिला। वह कुछ उदास-सा हो गया। शायद मुझसे उसे ऐसी आशा भी नहीं थी कि मैं उसके हर प्रश्न पर मौन साध लूंगा।

वह आगे बोल पड़ा —"कैसा जमाना आया है? साथी-साथी को नहीं पहचानता। वह दिन अब दूर नहीं जब बेटा बाप को पहचानने से इन्कार कर देगा। हम और ये साथ-साथ ही तो पढ़ते थे। एक-दो साल नहीं, कक्षा एक से कक्षा चार तक पूरे चार वर्ष साथ रहे। ये शायद इसलिए नहीं पहचान पा रहे कि मैं एक सामान्य पल्लेदार हूं और ये एक आफिसर···।" कहते हुए उसकी आंखों में आंसू छलछला गये।

उसके आंसुओं ने मुझ पर मानो पानी उड़ेल दिया। मैं उसकी ओर घूर-घूर कर देखने लगा। कुछ असमंजस में पड़ गया। मेरे साथ जो मुन्ने खां पढ़ता था उससे चेहरा तो जरूर इसका मिलता है, लेकिन मेरे साथी के तो आंखें थीं। इसके तो एक आंख है ही नहीं···।"

मैं सोचता ही रहा, लेकिन इतना साहस नहीं जुटा सका कि उसी के प्रश्नों को दुहराकर उसी से यह पूछ लूं कि यह सब कब, कैसे और क्यों हुआ? पूछना तो शायद उसके घाव पर नमक छिड़कना ही होता, किन्तु मैं यह चाहता जरूर था कि मेरे सभी प्रश्नों का उत्तर मुझे मिल जाए।

क्षमा-याचना करते हुए मैंने उससे कहा—"मिले हुए बहुत समय हो गया। अधिक नहीं तो यह पैंतालीस-पचास साल से कम पहले की बात नहीं है। पचास वर्ष में तो दुनिया ही बदल जाती है इसीलिए यह भूल हुई। ..."

"हां भाई। सब कुछ बिलकुल बदल गया है। कक्षा में हम दो ही तो मुसलमान बच्चे थे—मैं और सफिया! तुम सभी लोग हमसे कितना प्रेम करते थे। याद है सन् 47 के दिन। कितनी मारकाट मच रही थी चारों ओर। मेरे पिताजी भी उसी मारकाट की चपेट में आ गए थे। सभी ने हमें सान्त्वना दी, सहारा दिया और सुरक्षा की। अब तो किसी को किसी की चिन्ता ही नहीं। कोई मरे, कोई कटे उनकी बला से। सबको अपनी चिन्ता है। कोई मन्दिर को रो रहा है, कोई मस्जिद को। अरे, सोचते तक नहीं कि क्या रखा है इन मन्दिरों और मस्जिदों में। अपना काम करो! उसी में सच्चा सुख है। बिना काम के जिन्दगी नहीं कटती। मुझे ही लो। इण्टर पास करके भी जब नौकरी नहीं मिली तो पल्लेदारी कर ली। क्या बुरा है इसमें? चोरी तो नहीं? बैठे-बैठे खजाने खाली हो जाते हैं। तुम तो बहुत दिन में आये हो। पटेल साहब के बारे में तो सुना होगा? कितने भले आदमी थे? जिधर निकल जाते थे उधर ही लोग उठकर, झुककर सलाम करते थे। कितनी जमीन थी उनके पास? अब तो सब कुछ चौपट हो गया। बच्चों ने सब कुछ शराब के लिए बेच डाला। जो इलाके का मालिक था आज उसके नाती-पोते एक-एक दाने के लिए तरस रहे हैं। किसको नहीं खाया शराब ने? दोनों उम्र पूरी होने से पहले ही चल पड़े। बच्चे बिलख रहे हैं।..." वह अपना काम करता रहा। सब कुछ कहता रहा और मैं चुपचाप सुनता रहा। कितनी सचाई और जीवन का यथार्थ था उसकी बातों में? वह कहता ही रहा।

"पढ़ाई का भी आजकल कितना बुरा हाल है? मेरे बच्चे ने एम० ए० पास कर लिया है। वह भी हिन्दी में और प्रथम श्रेणी में, लेकिन कितनी अशुद्धियां करता है, अल्लाह ही जाने। ज्यों-ज्यों साधन-सुविधाएं बढ़ती जा रही हैं, त्यों-त्यों लोग आलसी होते जा रहे हैं। धन और सम्पन्नता ने लोगों के आपस के प्रेमपूर्ण सम्बन्धों को ही समाप्त कर दिया है। कोई किसी से बात तक करना पसन्द नहीं करता। यह कमी किसी एक में नहीं सभी में आती जा रही है। पढ़ने-पढ़ाने वालों को ही देख लो। क्या सम्बन्ध बन गये हैं। सरस्वती के मन्दिर लक्ष्मी के घर बन गये हैं। अध्यापकों को ट्यूशन करना जितना अधिक पसन्द है उतना कक्षा में पढ़ाना नहीं। ऐसे लोगों को आदर नहीं मिलता। आदर मिलता है त्याग से, गुणों से, न कि मांगने से। देखो न! याद है अपने पण्डितजी मालवीया को? हम लोगों को कितना डांटते थे। कभी-कभी तो पीट भी देते थे। जरा-सी भी चूक कहीं हुई नहीं कि वही डांट, वही फटकार, वही पिटाई! कितना डर लगता था हम लोगों को पण्डितजी से? लेकिन उनकी डांट, उनकी फटकार,

उनकी मार सब कुछ हमारे ही लिए तो था। सुबह आठ बजे बुला लेते थे और हम को दिन छिपने से पहले कभी छोड़ते ही नहीं थे। इतनी मेहनत, और हमने दिया क्या ? कुछ नहीं न ? कभी एक पैसा तक नहीं मांगा। कितना त्याग था उनका हमारे लिए ? इतवार की भी कभी छुट्टी नहीं मनाई उन्होंने, और उनकी मेहनत से जब हम सभी इम्तहान में पास हुए, तो हमारे माता-पिता से भी अधिक खुशी उन्हें ही हुई थी। उस समय हम उनकी मार से डरते थे, आज उनके प्यार के लिए रोते हैं। आज न वैसे शिक्षक हैं और न वैसे विद्यार्थी। किसी का किसी से मन से लगाव नहीं। ऊपरी सम्बन्ध रह गये हैं।…"

मुझे उसकी दर्शनभरी यथार्थ से पूर्ण बातों में बड़ा आनन्द आ रहा था। सोचने लगा—"कितना बड़ा शिक्षाविद है यह पल्लेदार ? अधिक पढ़ा भले ही न हो, लेकिन शिक्षा और जीवन के यथार्थ का ज्ञान उसे किसी से कम नहीं। आडम्बरों से हीन कितना बड़ा तपस्वी है यह मुन्ने खां !"

मुन्ने खां ने आगे बताया—"मुझे रामलीला बहुत प्रिय थी। देखता भी था और करता भी था। सफिया गोरे रंग का था और उसे राम बनना ही पसन्द था। रावण बनना भला किसे पसन्द हो सकता है ? रावण बनना मेरी मजबूरी थी। इसे मैं दुर्भाग्य कहूं या होनहार की बात—दशहरे का दिन था। राम के हाथों रावण को मरना था। रावण जान से तो नहीं मर पाया, लेकिन राम के तीर ने मेरी एक आंख ले ली। मैं बेहोश होकर गिर पड़ा। मैं उसके पश्चात् कभी भी रावण नहीं बन सका। यही मेरी सबसे बड़ी पीड़ा है। उम्र काफी हो गयी है, मैं चाहता हूं कि राम का एक और बाण लगे तो मेरा उद्धार हो जाए।…"

मुन्ने खां कहता गया। मुझे सोचने के लिए बाध्य करता गया। मेरा सोचना जारी है—बड़ा कौन ? सच्चा कर्मयोगी कौन ? शिक्षाविद् कौन ? धर्मनिरपेक्ष कौन ? हम दुनिया के लोग या पल्लेदार मुन्ने खां ? □

इल्मफरो

शीतांशु भार

प्रार्थना समाप्ति के बाद शाला के अहाते में खड़े-खड़े घनानन्दजी बच्चों के
रेवड़ को देखने लगे। कक्षाओं की ओर वे सभी तो भेड़-बकरियों की तरह रे
रहे थे। आसपास नवम्बर की गुनगुनी धूप पसरी हुई थी। समीप वाले खाली
पर बच्चों ने पहले से ही टाट-पट्टियां बिछा दी थीं।

पाली पछाऊं क्षेत्र की इस शासकीय माध्यमिक शाला में घनानन्दजी सहित
अध्यापक कार्यरत हैं। किन्तु यह तो सरकारी रेकार्ड में ही दर्ज है। वास्तवि
तो यह है कि अध्यापकों के चार-पांच स्थान पिछले दो वर्ष से रिक्त चले आ
हैं। छह में से केवल चार ही अध्यापक शाला में उपस्थित रहा करते हैं। वि
के अध्यापक किशनदत्त तो यूनियन के चक्कर में अक्सर इधर-उधर ही रहा क
हैं। घनानन्दजी आठवीं कक्षा को हिन्दी-अंग्रेजी दोनों ही विषय पढ़ाया करते

घनानन्दजी ऑफिस में आकर डाक देखने लगे। एक शासकीय परिपत्र
देखकर वे धक्-से रह गए। उसमें शिक्षा निदेशालय के निदेशक ने प्रदेश के अध्या
वर्ग से निवेदन किया था कि वे अपने वयोवृद्ध सहयोगी जयदत्तजी की यथास
आर्थिक सहायता करें। इन दिनों वे भुवाली सैनिटोरियम में जीवन से संघर्ष
रहे हैं। उधर, गांव में उनका परिवार एक-एक पैसे के लिए मोहताज हो रहा

—मास्साब! गोपदेव ने अन्दर आकर उनकी तन्द्रा भंग की, फिर
सोचा आपने?

—अरे भाई! घनानन्दजी के ललाट पर त्रिवली खिंच आई, दो अध्या
पहले से ही गायब हैं। ऐसे में अगर ऊपर से कोई अधिकारी आ जाए तो?

—तो फिर मैं मेडिकल दे दूं? गोपदेव तो जैसे उनकी गर्दन पर सवार
होने लगे।

—ऐसे करो। घनानन्दजी ने हाथ का परिपत्र एक ओर रख दिया, कल
ठहर जाओ। सुना है, पनराम आ रहा है।

फिर ठीक है। सन्तुष्ट होकर थीसिस उनके कमरे से बाहर चल दिए।

परमानन्दजी फिर से उस परिसर को देखने लगे। जयदत्तजी की स्मृति से उनका मन खिन्न हो आया। दरअसल, उनके जीवन-पथ पर जयदत्तजी एक प्रकाश स्तम्भ के रूप में रहे हैं। उस वयोवृद्ध संत से उन्होंने क्या-कुछ नहीं सीखा? उनकी आँखों के आगे पिछले दिन साकार होने लगे।

इस बारह वर्ष पूर्व परमानन्दजी उन्हीं जयदत्तजी के साथ सहायक अध्यापक के रूप में कार्य किया करते थे। मझोड़ की उस राजकीय माध्यमिक शाला में जयदत्तजी वर्षों से प्रधानाध्यापक के पद पर थे। उनके कुछ अपने अलग ही नियम सिद्धान्त थे। विचारों में ही नहीं, खान-पान, रहन-सहन और व्यवहार में भी वे सात्त्विक प्रवृत्ति के थे।

—देखो भई! एक बार जयदत्तजी स्टाफ रूम में अध्यापक की गरिमा का बखान करने लगे थे। यह ठीक है कि आज का अध्यापक वेतन-भोगी है, लेकिन उसे यह कभी भी नहीं भूलना चाहिए कि आने वाली पीढ़ी उसी के बताये गए मार्ग का अनुसरण किया करेगी। एक आदर्श अध्यापक···।

—लेकिन मास्साब···। एक अध्यापक ने उन्हें बीच में ही टोक दिया था, जब अपनी ही सन्तान अपना कहा नहीं मानती तो फिर कैसे कहा जा सकता है कि छात्र अध्यापक का कहना मानेंगे ही।

—न मानें। जयदत्तजी मुस्करा दिए थे, अच्छा अध्यापक तो कुम्हार के समान हुआ करता है। जिस प्रकार कुम्हार कच्चे घड़े को पीट-पीटकर उसे सही करता है, अध्यापक भी ऐसे ही सच्चरित्र विद्यार्थियों का निर्माण करता है।

जयदत्तजी अपने कथन की पुष्टि के लिए ऐसे-ऐसे तर्क देने लगते कि अपना निरुत्तर हो जाता था।

एक बार क्षेत्र की अन्य शालाओं की ही देखा-देखी उनके छात्रों ने भी हड़ताल कर दी थी। किसी शरारती बच्चे ने नोटिस-बोर्ड के श्यामपट्ट पर चॉक से लिख दिया था—"हम नहीं पढ़ना चाहते।"

देखकर जयदत्तजी मुस्करा दिए थे। उन्होंने उसे मिटाकर वहां लिख दिया था—"हमें तुम लोगों को पढ़ाना ही होगा।" वे अपने सहयोगियों से कहा करते थे कि माध्यमिक स्तर पर शिक्षा पा रहे किशोर अल्प बुद्धि के हुआ करते हैं। अध्यापकों का कर्तव्य है कि वे साम-दाम-दण्ड-भेद किसी-न-किसी रूप में उन्हें पढ़ायें-लिखायें।

प्रत्येक वर्ष वार्षिक परीक्षाओं के परिणाम निकलते। उत्तीर्ण छात्रों के अभिभावक उनके पास मिठाई के डिब्बे लेकर आया करते। शाला से स्थानान्तरण प्रमाण-पत्र लेने समय वे जयदत्तजी के आगे दस-पांच रुपए के नोट रख देते।

—नहीं भई! यह ठीक बात नहीं है। जयदत्तजी उन उपहारों को छूने तक

नहीं थे। वे कहा करते थे, ये नोट आप बालक को मेरी ओर से दे दीजिए। मिठाई भी बच्चों में बांट दीजिए।

एक बार घनानन्दजी का किसी काम से जयदत्तजी के गांव जाना हुआ था। रात को वे वहीं रुक गए थे। जयदत्तजी की पांच पुत्रियां और तीन पुत्र थे। उनकी साध्वी पत्नी बड़ी कठिनाई से उनका पालन-पोषण कर पाती थी।

—उन्हें तो सतजुग में जन्म लेना चाहिए था। जयदत्तजी की पत्नी ने गहरी सांस खींची थी, आज के कलियुग में वे कलजुग में सतजुगी सिक्के चला रहे हैं।

—चलो! घनानन्दजी ने उनका मन रखने के लिए कह दिया था, मास्साब को इसी में सुख मिलता है, यही सही।

—उनसे अच्छा तो वह भिश्ती था जिसने एक दिन के लिए चमड़े के सिक्के चलाए थे। जयदत्तजी की पत्नी ने कहा था।

घनानन्दजी चाहते थे कि जयदत्तजी अपने घर-द्वार की ओर ध्यान दें। उन्होंने साथ चाहा कि वे हवा के रुख के साथ-साथ ही चलें, समय की नब्ज टटोलें। किन्तु जयदत्तजी अपने सिद्धान्तों से टस-से-मस नहीं होते थे। एक दिन उन्होंने कह ही दिया था, मास्साब, आज की महंगाई में केवल वेतन के सहारे ही जिन्दा रहना कठिन है। आपको गुरु-दक्षिणा लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

—नहीं हो। जयदत्तजी ने हाथ हिला दिया था, महाभारत काल में दी होगी कभी किसी शिष्य ने अपने गुरु को दक्षिणा!

घनानन्दजी निरुत्तर हो आए थे।

—सच्चा अध्यापक कभी भी धन के पीछे नहीं भागा करता। जयदत्तजी मुस्करा दिए थे। धन तो साधन मात्र है। अध्यापक का साध्य तो विद्यादान हुआ करता है।

धीरे-धीरे जयदत्तजी के वही सिद्धान्त उनका शोषण करने लगे थे। गांव-जवार में पड़ी उनकी घर-गृहस्थी बुरी तरह से चरमराने लगी थी। उनकी पुत्रियां दिन-ब-दिन पहाड़ होने लगी थीं। बड़ी तो एक विजातीय लड़के के साथ देश-मैदान की ओर भाग गई थी। बड़ा पुत्र छटा हुआ बदमाश निकला। आये दिन वह वनों में घास-लकड़ियां लाने गई हुई बहू-बेटियों को तंग किया करता था। चाकू की नोक पर वह उनके गहने उतरवा लेता। एक दिन कुछ लोगों ने उसे शराब पिला-पिलाकर जिन्दा ही एक गड्ढे में दाब दिया था। बीच का पुत्र पहले ही किसी सड़क-दुर्घटना में चल बसा था। किन्तु जयदत्तजी के मुंह से उफ! तक नहीं निकली थी। उनकी पत्नी निरन्तर टूटती ही गई। अन्त में कैंसर-ग्रस्त होकर उन्हें भी मुक्ति मिल गई थी।

अपनी खिली हुई बगिया को उजड़ते देखकर वह बेदर्द माली भी शायद अन्दर-ही-अन्दर खोखला होने लगा था। बीड़ी-सिगरेट न पीने पर भी उन्हें दमा

की बीमारी ने आ घेरा था। फिर [illegible] दिन के [illegible] ही [illegible]। एक दिन डॉक्टर ने [illegible] फैसला सुना दिया।

[illegible]! घनानंदजी ने उनसे कहा था, अब आगे क्यों नहीं होते! [illegible] मन से उन्हें [illegible] भेजना पड़ा है।

—नहीं भई! जयदत्तजी ने मनाही कर दी थी, अपना मन नहीं करता।

और, यह बात भी न थी कि जयदत्तजी के पूर्वाग्रह से ही नहीं। [illegible] [illegible] उनके प्रति आदर भाव रखता था। [illegible] उनके लिए दूध, फल भी लाते थे। किन्तु वे उन्हें सूना तक नहीं [illegible] करते थे।

जल्द ही जयदत्तजी को मोतिया बीमारी ने आ घेरा था। पहले उनकी दृष्टि कमजोर हुई फिर दोनों ही आँखों में एक साथ ही मोतियाबिन्द छा गया। उन्हें जिला चिकित्सालय के विशेषज्ञ [illegible] बड़ी कठिनाई से उन्हें ऑपरेशन के लिए राजी करा सके थे।

—भई, आँखों का मामला है। जयदत्तजी ने कहा था, देवी सरस्वती की आराधना की खातिर अब यह जरूरी हो गया है।

आँखों पर मोटे शीशे की ऐनक लगाए हुए वे [illegible] दिन-रात पढ़ने लिखने के काम में लगे रहते थे। उधर, उनकी पारिवारिक स्थिति और भी विस्फोटक होने लगी थी। पत्नी की मृत्यु के बाद से उनके बच्चों की देखभाल उनके छोटे भाई करने लगे थे।

घनानंदजी के कंधों पर भी तो गृहस्थी का भार आ पड़ा था। पिता की मृत्यु के बाद से तो वे उस चक्की में बुरी तरह से पिसने लगे थे। जयदत्तजी की उस दयनीय दशा को देखकर पहली बार उनकी आँख खुली थी। वे धर्म-अधर्म के युद्धक्षेत्र में खड़े थे। उस युद्ध में वे बुरी तरह से लड़खड़ाने लगे थे। अंततः उन्होंने भी अपनी नैतिकता के हथियार डाल दिए थे। जयदत्तजी सैनिटोरियम में भरती हो चुके थे। उसके तीसरे ही दिन उन्होंने आठवीं के बच्चों को खुली चेतावनी दे डाली थी। बच्चों, कान खोलकर सुन लो! जिन्हें बोर्ड की परीक्षा में अच्छे अंकों से से पास होना है, वे शाम को मेरे डेरे पर पढ़ने को आ जाया करें। पाँच-दस रुपल्ली कोई बड़ी बात नहीं होती।

ट्यूशन का पहला चस्का घनानंदजी को उसी दिन से लगा है। उसी वर्ष उनकी पदोन्नति प्रधानाध्यापक के पद पर हो गई थी। दो वर्ष ताड़ीखेत में रहने के बाद पिछले वर्ष उन्होंने स्थानीय विधायक की सिफारिश पर अपना स्थानांतरण अपने ही क्षेत्र की इस शाला में करवा लिया था।

टन्-टन् कर चपरासी ने दूसरा घंटा बजाया। घनानंदजी की तंद्रा भंग हुई। वे ऑफिस से बाहर निकल आए।

—प्रेमसिंह! उन्होंने सामने खड़े अपने सहयोगी अध्यापक को आवाज दी।

—जी मास्साब ! प्रेमसिंह उनके पास चले आए।

—हमारे घर दो-चार गट्ठर लकड़ियां तो भिजवाओ। उन्होंने कहा।

—बस ही लो मास्साब। प्रेमसिंह व्यावहारिक सौदेबाजी पर उतर आए। सिर खुजलाने लगे। मास्साब, गेहूं बोआई का समय आ गया है।

—दो-चार दिन बाद चले जाना। घनानंदजी ने जैसे उन्हें हरी झंडी दिखला दी, तब तक शेरसिंह भी लौट आएंगे।

—ठीक है। कहकर प्रेमसिंह अपनी कक्षा की ओर चल दिए।

चपरासी ने घंटा बजाया। घनानंदजी कक्षा से निकल कर ऑफिस में आ गए वे कुर्सी पर बैठे तो उनकी दृष्टि उसी परिपत्र पर आ लगी। इससे उसका मन खराब होने लगा। वे अपने आप में उसे देखने का साहस नहीं जुटा पा रहे थे।

—मास्साब, जयहिंद ! अचानक ही धनराम अध्यापक ने अन्दर आकर घनानंदजी को अभिवादन किया।

—आ भई धनराम ! घनानंदजी मुस्करा दिए। निपट गया तेरा काम-धाम ?

—हां मास्साब। धनराम वहीं पड़ी एक टूटी कुर्सी पर बैठते हुए बोले, मेरा आवेदन पत्र फाड़ दीजिए।

—नहीं भई। घनानंदजी ने हाथ हिला दिया। इस हाथ ले, उस हाथ दे। कल जब स्कूल आ जाओगे तभी फाड़ेंगे। कहीं कोई अधिकारी आ जाए तो ?

—हाथ कंगन को आरसी क्या, मास्साब ! समझो लो मैं आ गया। धनराम वहीं पड़ी उपस्थिति पंजिका पर अपने हस्ताक्षर करने लगे। उन्होंने पिछले पांच दिनों की उपस्थिति एक साथ ही लगा दी। उधर घनानंदजी उनके आवेदन-पत्र को फाड़ने लगे।

तभी बाहर से गोपदेव उनके कमरे में आ गए।

—आ भई ! घनानंदजी ने उबासी लेकर कहा, मैंने कहा था न कि धनराम आने ही वाले हैं।

—तो मैं जाऊं, मास्साब ? गोपदेव ने पूछा।

—अरे भई, आवेदन-पत्र तो देते जाओ। घनानंदजी के माथे पर बल पड़ गए, तुम लोग मेरी नौकरी पर'''।

—अजी वाह ! गोपदेव पांच दिन का आवेदन-पत्र घसीटने लगे, आपकी नौकरी पर आंच नहीं आने की। आप तो सरकार के पक्के जवाई हैं।

गोपदेव से आवेदन-पत्र लेते हुए घनानंदजी ने कहा, गोपदेव, अगले सोमवार तक जरूर आ जाना। मुझे भी चार-छह दिन के लिए जाना है।

—ठीक है, मास्साब। गोपदेव मुस्करा दिए, मैंने आपकी बात बात गांठ बांध ली है।

छुट्टी का समय होने लगा था। घनानंदजी दुनियादारी के जाल में घिरने

लगे। उनके सामने अनेक समस्याएं थीं। उन्हें युवती पुत्री के विवाह प्रबन्ध के साथ-साथ अपने मेधावी पुत्र की उच्च शिक्षा की भी व्यवस्था करनी थी। इस वर्ष वे जीर्ण हो आये पुश्तैनी मकान की भी मरम्मत करवाना चाहते थे। इन सबके लिए वे पिछले चारेक वर्ष से रुपयों की जुगाड करते आ रहे हैं। इसके लिए उन्होंने अनेक काम अपने हाथ में लिए हुए हैं। राजकीय लॉटरी के अलावा एक चिटफंड कम्पनी का काम भी उन्होंने अपने हाथ में लिया है। ट्यूशनों के लिए उन्हें कहीं भी नही भटकना पडता। अपनी ही शाला की आठवी कक्षा के कमजोर बच्चों से ही प्रतिवर्ष दो हजार रुपयों की आमदनी हो जाया करती है।

चपरासी ने छुट्टी की घंटी बजाई। घनानंदजी आठवी कक्षा से अपने कमरे मे आ गए। अहाते में खडे-खडे वे घर जाते हुए बच्चों को देखने लगे। उनकी वही भेड चाल थी।

शाला और अहाता खाली हो चुका था। साथ के अध्यापक भी सभी के अपने डेरों को चल दिए थे। घनानदजी ऑफिस में आ गए। तभी बाहर से एक बच्चा उनके कमरे में ताक-झाक करने लगा।

—कौन है रे? उन्होने पूछा।

—मैं हूं मास्सजी। एक दुबला-पतला बच्चा झिझकता हुआ अन्दर आ गया। वह हाथ में एक प्लास्टिक का डिब्बा लिए हुए था।

बच्चे के लिए घनानंदजी की आखों मे प्रश्नचिह्न उभर आया।

—मास्सजी, बौज्यू ने आपके लिए घी भेजा है। बच्चे ने उनकी मेज पर घी का डिब्बा रख दिया।

—अरे कही वनस्पति में ही तो दो-चार बूंदें नही टपका दी? मुस्कराकर वे उस घी को सूघने लगे।

—नही मास्सजी। बच्चा पूरे आत्मविश्वास के साथ बोला, इसे तो घर पर ही मेरी मां ने तैयार किया है।

घनानदजी को याद आया कि पिछले महीने से वे भैसमेन के भोनराम शिल्पकार से बच्चे की कमजोरी की बात कहते आ रहे हैं। उसका भेजा हुआ वह घी उन्हें खिसकाने लगा। वे उससे बोले, ऐसा करना कि रात को दो रोटी खाकर तू भी मेरे डेरे पर चले आना।

— जी मास्सजी। बच्चा उन्हें प्रणाम कर अपने गांव की डगर पर हो लिया।

बाहर से हवा का झोंका आया। मेज के सिरे पर पड़ा हुआ वह मासिक पत्रिका फड़फड़ाने लगा। घनानदजी को उसमें जयदत्तजी के प्राण फड़फड़ाते हुए दिखाई देने लगे। प्रदेश के अध्यापक-वृन्द ने यदि कुछ चंदा करके कुछ धन राशि जुटा भी ली तो क्या वे उसे स्वीकार करेंगे? नहीं, वे टूट भले ही जाएं किन्तु झुकें

नही। किसी के आगे वे हाथ नहीं पसारेंगे। वह परिपत्र उन्हे अनुपयोगी लगने लगा। अगले ही क्षण उन्होने उसे फाड दिया और रद्दी की टोकरी के हवाले कर दिया।

घनानंदजी ने मेज की दराज मे अगले सप्ताह खुलने वाली लॉटरी के टिकट निकाल लिए। चिटफंड और अल्पबचत के कागजातो को भी उन्होंने झोले के हवाले कर लिया। इस वर्ष कुल मिलाकर कोई चारेक हजार रुपयो का जुगाड तो वे कर ही लेंगे। हरिजन बच्चे द्वारा लाए गए घी को भी उन्होंने झोले के हवाले कर लिया।

कंधे पर झोला लटकाये हुए घनानदजी अपने गाव की ओर जाने लगे। गाव की डगर पर चलते हुए वे निरतर आगे-पीछे की ही सोचते जा रहे थे। पीछे छूटे हुए समय का उन्हे भारी पछतावा हो रहा था। यदि पिछले दस-बारह वर्ष से वे यही धधे करते तो आज उनकी माली हालत और ही होती। फिर भी, आने वाले भविष्य के प्रति वे पूरी तरह से आशावान थे। उनके धधे यदि इसी प्रकार फैलते रहे, ट्यूशनो की फसल हर वर्ष लहलहाती रही तो उनकी चादी-ही-चादी है। □

गंध-सुगंध

भगवतीलाल शर्मा

चलो, योग्य लड़का मिल गया, छुट्टी हुई। यह मेघना पता नहीं किस ग्रह-नक्षत्र में पैदा हुई, बड़ा दुःख दिया, बड़ा दौड़ाया। लड़का डॉक्टरी कर रहा है। मालूम है, बड़ा खूबसूरत। बड़ी भाग्यशाली है हमारी मेघना। छोड़ना नहीं किसी भी कीमत पर इस लड़के को। अब तो लड़का देखने आ जाए, उसके अपने आ जाएं, हां कह दें, गंगा नहाए। हे भगवान, लड़की किसी को न दे और दे तो लड़का तलाश करने की तकलीफ न दे।

देखने वाले आने लगे। लड़का आया, उसके माता-पिता आये। हां, हो गई और हां भी ठंडी नहीं, पूरी तत्परता और गर्मजोशी के साथ। उनके लिए शानदार भोजन की व्यवस्था हुई। जाते समय उससे भी बढ़कर विदाई का दस्तूर हुआ। फिर लड़के के बुआ-फूफा आए, काका-काकी आए, जीजी जीजा आए, भैया-भाभी आए, बारी-बारी आए, सबकी यथोचित आवभगत हुई, विदाई हुई। सबने एक स्वर से कन्या पसन्द की और यहां के स्वागत-सत्कार की प्रशंसा भी साथ में। और इसे विवाह और आगे की पूर्व भूमिका मान अच्छा ब्याई मिलने की अपने भाग्य की सराहना भी की।

तिलक में क्या देना है, किस दिन देना है, यह भी इन दिनों थोड़ा बाहर का हिसाब-किताब बिगड़ा होने से भीतर ही बैठकर तय कर लें। तय कर लेना और स्पष्ट बात कर लेना अच्छा है। इससे बार-बार की मांग-तांग से बच जाते हैं, फजीहत से बच जाते हैं। बाद में प्रेम की ही बात हो, मिलने और आनन्द की ही बात हो, जीवन-भर निभने-निभाने की ही बात हो।

लेन-देन तय हो गया। तिलक का दिन निश्चित हो गया। अक्षय तृतीया को उनके भाई की बेटी का विवाह है। इसी विवाह में अगले दिन सुबह शुभ मुहूर्त में तिलक का दस्तूर हो जाएगा। उनको तिलक के लिए अलग से मेहमानों को बुलाना नहीं पड़ेगा और इधर भी यह आयोजन सबके सामने होने से शान बढ़ेगी।

मकसद ये भी गए कि उन सबके सामने मंगाने का उतारा मकसद यह भी है कि इत ऊंचे-ऊंचे नांगों के बीच देने के लिए आइटम भी ऊंचे-ऊंचे लाने पड़ेंगे।

कौन अपनी हेठी दिखाएगा, सो उनको एक से एक ऊंची चीज खरीदनी पड़ी

इस शादी का सम्मान न्यौता मिला। तिलक की पूरी तैयारी थी। एक न दुल्हन-सी कार भाड़े की। तिलक का सारा सामान उसमें जमाया। भाई, जमाई भाभा को साथ लिया। मेघना को भी साथ लाने का निर्देश था। आशय था कि वह भी अपनी ससुराल को निकट से देख ले और तिलक के बाद लड़के वालों की ओर से साड़ी ओढ़ाने की रस्म भी साथ की साथ हो जाए।

शाम तक इनको बुलावा गया था और थोड़ी रात गए तक ये पहुंच भी गए।

हमने लड़की दी है, भोजन नहीं करेंगे। लेकिन सबने मनाया कि लड़की देन तब माना जाता है जब बाकायदा तिलक दे दिया जाता है। तिलक सुबह दिय जाएगा, फिर मत करना भोजन। कोई आग्रह नहीं करेगा तब। खाना खिलाया बड़ा प्रेम जताया और बड़े जतन से सुलाया। उनकी दृष्टि मे ये विशिष्ट मेहमान थे और इनको भी आभास करा दिया कि वे थे।

मेघना को देखकर अपनी सुन्दरता पर दम्भ भरने वाली और घंटों शीशा निहारने वाली बालाएं ठिकाने बैठ गईं। सबने उसके रूप-लावण्य के बारे में इतना ज्यादा कहा कि फिर भी लगा बहुत कम कहा। उसकी सुन्दरता का बखान करने वाले शब्दों को मोतियों में पिरो, थालियों मे सजा दिये, फिर भी वे मेघना की आभा न पा सके। हालांकि उसका होने वाला पति कमलेश्वर भी कोई कम नहीं था पर मेघना के लिए कमलेश्वर जहां एक संयोग है, कमलेश्वर के लिए मेघना वहीं बड़े भाग्य का योग है।

तिलक का मुहूर्त रात पण्डित को पूछ लिया था। नौ और साढ़े नौ के बीच श्रेष्ठ मुहूर्त था। सुबह उठे, नहाने-धोने, नाश्ते से निपटे और तिलक के आयोजन मे लग गए।

जाजमें बिछ गईं। जाजम पर भावी वर के लिए एक गादी और मोढ़ा लग गया। पूजा का सामान आ गया। समाज जुट गया। मन में उमंग और मुखड़े पर मुस्कराहट लिए सांवली गोरी सजी-संवरी महिलाएं आकर बैठ गईं। इन्द्रधनुष खिंच गया। उनके अधरों से भी मीठे-मीठे [illegible] कोयलों का समवेत

[illegible]

[illegible]

[illegible] पहचान में नहीं आएगी।

सबको इस शादी में से कुछ-न-कुछ मिलना था इसलिए सबकी नजर इस पर लगी हुई थी। पर जिसके पीछे यह सब हो रहा था, वह कहीं नजर नहीं आ रहा था। सबकी नजरें कमलेश्वर को ढूंढ रही थीं। कमलेश्वर यों आएगा नहीं। वह कोई आम आदमी तो है नहीं आज, कि आए और कहीं बैठ जाए। वह इस आयोजन का हीरो है, और हीरो है इसलिए, बड़े आग्रह-अनुग्रह के साथ आएगा।

पण्डितजी पधार गए। मेघना के पिता बिहारीलालजी ने आगे खड़े होकर उनका स्वागत किया। पण्डितजी ने आशीर्वाद दिया और पूजा करने की प्राथमिक विधि पूरी की और हुक्म दिया—कंवर साहब को बुलवाइये जजमान। मुहूर्त निकला जा रहा है।

कमलेश्वर की जगह उसके पिता सदाशिव आकर बैठ गए और सूचना दी कि कमलेश्वर फोटोग्राफर को लेने गया है, आता ही होगा।

आजकल के बच्चों को फोटोग्राफर तो पहले चाहिए। काफी समय तक इस 'फोटोग्राफर और आज युवा' पर परस्पर वादविवाद होता रहा। और होता, पर किसी ने आकर कहा—कमलेश्वर आ गए और फोटोग्राफर को भी ले आए। एक

फोटो लेने वाला और एक फिल्म खींचने वाला, दो-दो फोटोग्राफर।

दोनों ने आकर अपना-अपना मोर्चा सम्भाल लिया।

आ गए हैं तो बुलाओ कमलेश्वर को, मुहूर्त निकला जा रहा है। पण्डितजी की मुस्लाहट होने लगी। शादी वाले के कई कार्यक्रम होने शेष थे। उनका भी समय निकला जा रहा था। मेहमान भी कुछ जाने की जल्दी में थे। उनकी बसों का समय भी आता जा रहा था। इस देर का सब पर काफी गहरा प्रभाव पड़ रहा था, और कमलेश्वर थे कि उन सबसे बेखबर केवल अपनी ही सोचे चले जा रहे थे। उनके पीछे संसार रुका पड़ा है और वह सो रहे हैं। ऐसे युवक भी होते हैं और ये डॉक्टर बनकर कितने बीमारों को जीवन दे पाएंगे भला! जिनके जीवन में इंतजार करवाने का मौका आना ही नहीं उनके जीवन में इंतजार करवाने का मौका आ गया, इसलिए इंतजार करने वालों को इंतजार करने का मजा चखाया जा रहा है। आप उनकी झलक पाने के लिए रोते रहिए, वे शीशे के सामने खड़े बाल संवारते रहेंगे।

एक दौड़ते दो दौड़े मगर कमलेश्वर तो क्या, उनको बुलाने वाले भी वापस नहीं आए।

महिलाओं के गीत चुक गए। बैंड की धुनें समाप्त हो गईं। 'आजकल के लड़कों का इस प्रकार का व्यवहार' पर टीका-टिप्पणी भी होकर बन्द हो गई। एक खामोशी-सी फैल गई। लोग-बाग उठ-बैठ करने लग गए। समाचार आए— कमलेश्वर शेविंग कर रहे हैं।

ठीक है पांच मिनट और। लेकिन पांच से पन्द्रह मिनट निकल गए। कमलेश्वर की सुगन्ध तक नहीं आई। सब एक-दूसरे का मुंह देखने लगे, दांत भींचने लगे और जो आशीर्वाद देने वाले थे शायद शाप भी देने लगे। उम्र की मजाक से उतरकर अब तो शिक्षा की मजाक भी उड़ाने लगे। पर यह सब उसी सन्नाटे में मन-ही-मन होने लगा और सब ऐसे ही बोलने और सुनने में उलझ गए, जैसे कोई दुर्घटना में फंस गया हो और अपनी-अपनी जान छुड़ाने के लिए हाथ-पैर मार रहा हो। कमलेश्वर नहीं आए। उनका दूत आया यह कहने के लिए कि अब वे स्नान कर रहे हैं।

मुहूर्त तो निकल गया पर पण्डितजी ने कहा कि हम सब मुहूर्त में ही आकर बैठे हैं इसलिए उसका निर्वाह तो हो गया। अब तो केवल कपड़े पहनने हैं, सो दस मिनट पहले या दस मिनट बाद में कोई फर्क नहीं पड़ता।

यह कमलेश्वर है क्या? क्या चीज़ है कमलेश्वर? उसके जैसे कितने लोग हैं इसको लोग उसे घूमकर देख और सरकार की बातों में खो गए, और औरत लोग बातें न करके देखती, सोच जानने में लग गईं।

एक-दो आदमी जाजम और कमलेश्वर के बीच आ-जा रहे थे। अब वे ब
बता रहे थे कि कमलेश्वर कपड़े पहन रहे हैं। समझ लीजिए कि वे आ ही
हैं।

"आप उन्हें जाकर जल्दी लिवा लाइये, कृपा होगी आपकी। आप उनके सि
हैं और उन्हें अधिकार से कह सकते हैं।" बिहारीलालजी ने सदाशिवजी को
उठाया।

सदाशिवजी भी आज्ञाकारी बालक की तरह उठकर चल दिए।

कोई दस मिनट बाद उन्होंने आकर बिहारीलालजी के कान में कहा—
"आपको थोड़ा पधारना पड़ेगा।"

बिहारीलालजी उनके पीछे हो लिए। दोनों मकान में गए। कमलेश्वर पंखे
के नीचे अलसाये-से आराम कुर्सी पर बैठे थे। चेहरा, मूड, कपड़े सब सुबह वाले।
कमलेश्वर साड़ी में होते तो कोपभवन में बैठी करुण-क्रन्दन करती कैकेयी के सदृश
लगते। पुरुष थे, और वैसे नहीं लगे मगर कुछ ऐसे-वैसे जरूर लगे।"तो वह
शेविंग, स्नान, वस्त्र, इत्र-फुलेल सब धोखा था।

क्या बिजली टूट पड़ी? जो भी हो, बिहारीलालजी भी भारी-से-भारी
वज्रपात के लिए पल मात्र में तैयार हो गए। सदाशिवजी ने समझाया—'लड़का
बेवकूफ है ब्याइजी साहब, इसलिए परेशानी उठानी पड़ रही है। हीरो होण्डा मांग
रहा है। हीरो होण्डा होगी तभी जाजम पर पांव धरेगा। हीरो होण्डा कोई खास
चीज तो नहीं है। दस मिनट में शोरूम से आ जाएगी, देख भी रखी है। केवल
पैसे चुकाने हैं। पैसे नहीं हैं, व्यवस्था हो जाएगी।"

"तो फिर यहां कहां है। वहीं जाजम पर आ जाते। बात हो जाती। हीरो
होण्डा भी आ जाती। सब जान जाते। आपकी इज्जत के साथ मेरी इज्जत भी
हो जाती। पधारिये वहीं।"

झपट्टा मारकर बिहारीलालजी वहां से निकले। उसी झपट्टे में जाजम के पास
आकर महिलाओं में बैठी मेघना को अपने पास बुलाया। दोनों दस कदम दूर
जा अकेले में खड़े हुए। पिता ने बेटी की पीठ को सहलाया—"हीरो होण्डा मांग
रहे हैं। मेरे ख्याल से ये वह व्यवस्था तो कहीं से कर लेंगे, हीरो होण्डा की नहीं कर
सकते तो मांग रहे हैं। ऐसा मंगता घर चाहे वह महल ही हो, बेटी के लिए
ससुराल नहीं साइबेरिया ही साबित होता है, तू क्या कहती है?"

—"मुझे कुछ नहीं कहना है पापा। बस यहां से चलना है। मुझे उल्टी आ
रही है।"

मेघना को वहीं छोड़ वे जाजम के किनारे आये।

इधर कमनेश्वर भी तैयार होकर जाजम पर लगी गादी पर आ बैठे। पंडित
ने उनके माथे पर तिलक लगाया, कलाई में लच्छा बाधा। सदाशिवजी भी
कराहट बिखेरते उनके पास ही आ बैठे। जो खड़े थे बैठ गए और अब सबका
न इधर आ गया।

उधर विहारीलालजी ने इशारा किया, कार आ गई। थालियों का सामान
टा जाने लगा। वसों-पेटियो मे जम भी गया। कार मे पहुच भी गया। सब
त मे, कि यह सब क्या हो रहा है! विहारीलालजी पागल कैसे हो रहे हैं? बात
ड़ कैसे रही है?

लोग पूछते रहे, वे टालते रहे। कार मे सबके वैठ जाने के बाद वे भी वैठने
। फाटक पर खड़े हो, सबको हाथ जोड़े, नमस्कार किया। माफी मागी
अब बताया—"ये लोग हीरोहोण्डा मांग रहे हैं, सो मैं हीरोहोण्डा लेने जा
हूं।"

कार चल दी। कुछ को वह दौड़ती हुई कार दुल्हन की जाती हुई डोली-सी
तो कुछ को समझ मे नही आने वाला लतीफा सुनाकर भाग जाने वाले खुली
सी।

□

वोटों की राजनीति

ओमदत्त जोशी

प्रातःकाल मैं नींद से उठा ही था, थोड़ी देर गुनगुनाने के बाद बाऊजी के पास खाट पर रजाई में सिमटकर चाय की प्रतीक्षा में बैठ गया। सर्दी आज कुछ अधिक ही थी। इतने में मकान के पिछवाड़े आम सड़क से लाउडस्पीकर चिल्लाया—"गांव के विकास के हेतु मृदुभाषी, विद्वान, कार्यकुशल व्यक्ति, इब्राहीम चाचा को ही सरपंच पद के लिए अपना अमूल्य वोट देकर सफल बनायें।"

पिताजी की प्रतिक्रिया हुई—"इस बार चुनाव का माहौल बड़ा खराब है, पार्टी-पार्टी में मतभेद। सब अपनी कुर्सी चाहते हैं। लाख समझाया कि भाई पार्टी के प्रति त्याग की भावना एवं निस्वार्थता रखनी चाहिए। जो कर्मठ हैं वे ही इस बार अनुशासन भंग कर रहे हैं…।"

इतने में विमला चाय के दो मग्गे लेकर आ गई, एक मैंने ले लिया और दूसरा बाऊजी की ओर बढ़ा दिया। चाय की दो-तीन घूंट ली ही थी कि लाउडस्पीकर की चिल्लाहट अब हमारे मकान के सामने वाली सड़क पर आ गई और देखते-ही-देखते इब्राहीम चाचा ने हमारी पोल में प्रवेश करते ही आवाज लगाई—"बाऊजी क्या हो रहा है? *मैं आपका आशीर्वाद लेने आया हूं…।"*

कहता-कहता वह कमरे में आ गया। एक प्याला उसके लिए भी मंगाते हुए उसे बैठाया। बैठते ही इब्राहीम चाचा ने अपना भाषण निरन्तर जारी रखा—"मैं किसी पार्टी-वार्टी में नहीं हूं और रहना भी नहीं चाहता। पार्टी के नाम पर बड़े नेता अपना उल्लू सीधा करते हैं, मुझे उनमें कोई विश्वास नहीं है…।"

इतने में चाय आ गई, चाचा ने चाय का प्याला हाथ में लेकर पुनः बोलना चालू किया—"मैं यह भी जानता हूं कि सरपंच का पद कांटों का ताज है, लेकिन गांव के विकास एवं उत्थान के लिए इस बार मैं पहनना चाहता हूं। आखिर कब तक पिछड़ने देंगे अपने गांव को? इस पार्टीबाजी से ही तो पूरे गांव का बंटाढार हो गया। पिछले इतने वर्षों से एक भी काम नहीं हुआ। विकास और उन्नति के

नाम पर अब मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता हूं गांव की इस तरह की बर्बादी···।"

बाबूजी ने चाय का मग्गा खाट के नीचे सरकाते हुए मौन तोड़ा—"देख भई इब्राहीम ! हमें तो गांव के विकास वाले व्यक्ति की जरूरत है। मेरे से कोई छिपा हुआ नहीं है, कौन कितने पानी में है ? जनता इसका न्याय कर देगी। तेरा जैसा योग्य एवं उत्साही व्यक्ति जरूर कुछ करके बताएगा, मुझे पूरा विश्वास है···।"

यह सुनते ही चाचा बीच में ही मुस्कराकर बोल उठा—"बस-बस, अब के कही आपने मेरी बात ! बस आपका आशीर्वाद लेने आया था, मिल गया। अच्छा मैं चलता हूं। पूरे गांव में घूमना है व्यक्तिगत सम्पर्क के लिए।" कहते-कहते चाचा हाथ जोड़ता हुआ रवाना हो गया। उसके जाने के पश्चात् मैंने बाबूजी से पूछा—"यह चाचा क्यों खड़ा हो रहा है, पहले भी हार चुका था। न तो इसके पास वर्कर हैं और न कोई व्यवस्था ?"

बाऊजी ने मुंह बिगाड़ते हुए कहा—'यह चुनावी माहौल है, देखें जाओ ऊंट किस करवट बैठता है ? चाचा यों ही धूल में लट्ठ लगा रहा है। मुझे भी लोगों ने खूब उकसाया, लेकिन मैंने तो साफ कह दिया कि मुझे नहीं खड़ा होना है किसी चुनाव-उनाव में।"

मैंने भी उनकी हां में हां मिलाकर कहा—"हां जी बेकार है, खामोख्वाह मरदर्द क्यों मोल लो अपने हाथों से ?'

कहते-कहते मैं कमरे से बाहर आ गया। शौचादि से निवृत्त होने की सोच रहा था, इतने में लाउडस्पीकर की आवाज आई—"ग्राम के चहुंमुखी विकास के लिए सरपंच पद के लिए एकमात्र उम्मीदवार इन्द्रसिंह 'मामा' को अपना वोट दीजिए।"

मैंने हंसते हुए बाऊजी से कहा—"लो एक और आ रहे हैं। इनकी भी सुननी होगी।"

बाऊजी ने उकताये हुए कहा—"ये तो मुझे दिन भर परेशान कर लेंगे, अच्छा हो कहीं बाहर चला जाता हूं। वापस दुपहर तक लौटूंगा। तब तक ये ठण्डे पड़ जाएंगे।"

मैं कुछ बोलूं उसके पूर्व ही सरपंच पद के द्वितीय उम्मीदवार इन्द्रसिंह मामा ने मकान में प्रवेशकर आवाज लगायी—"बाऊ साब ! ओ बाऊ साब !! अपने बच्चे को आशीर्वाद प्रदान कीजिए।"

कमरे से बाहर आये, इन्द्रसिंह ने बाऊजी के पैर छूने का नाटक किया और बोला—"बाऊ साब ! आपका आशीर्वाद लेने आया हूं। पार्टी के निर्णय पर ही खड़ा हुआ हूं। ज्यादा पढ़ा-लिखा तो हूं नहीं, पर पिछले सोलह सालों से वार्ड मैम्बरी करता आ रहा हूं। इस बार गांव सेवा का मौका देगा तो जरूर करूंगा। आप लोगों का आशीर्वाद हमेशा मेरे साथ रहेगा। यद्यपि मैं यह जानता हूं कि

बस सरपंची कर सकेगा। इसलिए गुरुजी मेरे मन ने विद्रोह किया है—उम्मीदवार के विरुद्ध, पार्टी के विरुद्ध नहीं…।"

बाऊजी जानते थे कि जब तक वे नहीं बोलेंगे, भाषण चालू रहेगा। अतः वे बोल उठे—"आप जैसे विद्वान एवं नवयुवक को ही यहां की बागडोर सम्भालनी चाहिए। ऐसा पढ़ा-लिखा व्यक्ति ही इतने बड़े गांव का सरपंच हो तो अच्छा है, मेरी यही इच्छा है कि इस बार कोई व्यक्ति आये। भाई-भतीजावाद एवं जातिवाद से ऊपर उठकर…।"

उम्मीदवार गजराज मुस्कराता हुआ बोला—"तो बस गुरुजी आज्ञा दो मुझे! आपका हाथ है न, बच्चे के सर पर…?"

बाऊजी ने आश्वासन दे विदायी दी। बाऊजी ने ताक में रखे बीड़ी के बण्डल को उठाया। उसके ऊपर का कागज फाड़ा और छाटकर एक बीड़ी निकाली। बीड़ी के अगले हिस्से को मुंह में दबाकर फूंक मारी फिर सीधी कर तसल्ली से सुलगा ली। मैंने पूछा—"बाऊजी! आप तो सबको ही आशीर्वाद दे रहे हो और वोट एक को देना है, फिर किसे देओगे?"

बाऊजी ने बीड़ी को झाड़कर हसते हुए कहा—"देखो भई! यह तो चुनाव की राजनीति है। तुम क्या जानो इसे? क्या इन आने वालों को पता नहीं है कि मैं किस पार्टी का कार्यकर्त्ता हूं। ये सब जानते हैं, फिर मैं क्यों किसी के उत्साह को मारूं! हां, कल तक एक-आध बैठ जाएगा। त्रिकोणात्मक संघर्ष रहेगा।"

चौथा उम्मीदवार इसर काठात भी इसी समय आ धमका। बाऊजी की तरफ देखकर बोला—'गुरुदेव, आपरो हाथ म्हारा माथा माथे चाहिए। पढ़्यो-लिख्यो तो हूं नी, पण पालटी री आज्ञा मानणी पड़सी। अब काले गांव रा विकास रा तीन मोटा काम कराणां है, पाणी, सफाई अर बिजली। इण तिना कामा में रात-दिन एक करणो है, आपरी किरपा अर मेरबानी होसी…।"

बाऊजी ने कहा—इसर भाई! तुम संजीदा हो, बाकी सब खड़े होने वाले युवक हैं। अभी उनको इतना बोध कहां है? मेरी तो हार्दिक इच्छा है कि इस बार तुम्हारी ही जीत हो।"

इसर भाई ने कहा—"पूरो ध्यान राखज्यो सा।" और चला गया। मैं शून्य में देखते हुए बाऊजी के सभी को दिये गए आश्वासनपूर्ण उत्तरों पर विचार करने लगा।

☐

कर्फ्यू

पुष्पलता कश्यप

शहर में कर्फ्यू लगा हुआ है। सेना के जवान सड़कों पर गश्त कर रहे हैं।
उसका पड़ोसी दमा का पुराना मरीज है। अचानक उसकी हालत बहुत बिगड़
गई है। सांस बड़ी कठिनाई से धौंकनी की तरह चल रही है। कोई टैक्सीवाला
अस्पताल तक भी चलने को तैयार नहीं होता है। एम्बुलेंस मिल नहीं रही है। दो
लड़के लूना लेकर कोई टैक्सी देखने चौराहे तक जाते हैं। बंदूकधारी उनका पीछा
करते हैं। लड़के घबराकर भागने लगते हैं। तभी पीछे बैठे लड़के की पीठ पर
राइफल की बट का एक भरपूर वार पड़ता है। वह नीचे गिर गया है। लूना चलाने
वाला भी गिर पड़ता है। सिपाही कहता है—साले कर्फ्यू का मतलब नहीं समझते!
;···लड़के किसी तरह जान छुड़ाकर भाग आते हैं।

आखिर एक भलामानस टैक्सीवाला मरीज की हालत सुनकर किसी तरह
अस्पताल चलने की जोखिम उठाने को राजी हो सका है। लेकिन किराया सामान्य
दिनों से चौगुना देना पड़ता है। गश्त पर तैनात जवान कई जगह टैक्सी को रोक-
कर पूछताछ करते हैं। राम-राम करके किसी तरह अस्पताल पहुंचते हैं।

उसी दिन रात को करीब आठ बजे बीमार चल बसता है। एक निजी जीप
मालिक ने लाश को घर पहुंचा देने की मेहरबानी की है।

अगली सुबह लाश को मरघट ले जाकर दाह कर्म करने की समस्या आती है।

—अनुमति-पत्र लेने मे तो पूरा दिन निकल जाएगा।···सभी जल्दी से जल्दी
मृतक के अंतिम संस्कार के काम को निपटा देने की सोच रहे हैं···मुर्दा, घर में
,तो नही रखा रह सकता !

—पता नही हालात कैसा मोड़ ले ले।···सभी अनागत से आशंकित हैं।

—डेथ-सर्टिफिकेट तो साथ मे है ही !···तसल्ली किनारा ढूंढ रही है।

घर और मोहल्ले के लोग ही इकट्ठा हो पाये हैं। दूर-दराज रहने वाले
रिश्तेदारों और मुलाकात के लोगों का मैयत में शुमार होना मुमकिन नहीं है।

—अर्थी झटपट तैयार करके, मुख्य रास्तों और चौराहों को छोड़ते हुए, गलियों में से गुजरकर श्मशान तक पहुंचा जाए !···यह तय रहता है।

लाश का चेहरा इस तरह खुला छोड़ रखा गया है, जिससे रास्ते में विशेष रोक-टोक नहीं हो सके।

जनाजे का जुलूस चल रहा है। रास्ते में घरों की खिड़कियों और दरवाजों की ओट में से झांकते हुए मासूम बच्चों और भयाक्रांत महिलाओं के लटके-पीले चेहरे दिखाई पड़ जाते हैं। उनके कुछ दूर रहते ही दरवाजे और खिड़कियां खटाक से बंद हो जाते हैं। भीतरी गलियों में जो पान-सिगरेट और चाय की इक्का-दुक्का बची-खुची दुकानें अथवा केबिन हैं वो इस जुलूस को दूर से देखकर ही बंद हो गये हैं। सड़कें और गलियां बिलकुल वीरान हैं। जगह-जगह दुकानों के शटर टूटे पड़े हैं। लूटपाट और आगजनी की कहानियां मुंह बोल रही हैं। दुकानों से बाहर निकालकर जलाये गये सामान से, आग को सुपुर्द वाहनों, टायरों और होर्डिंगों से अभी भी धुआं निकल रहा है। वाहनों, ठेलों—केबिनों—बूथों—स्टॉलों आदि के टूटे-फूटे अवशेष बर्बादी की गवाही दे रहे हैं। आम रास्तों पर पत्थर, लाठियों और कांच के टुकड़े भारी मात्रा में बिखरे पड़े हैं। ये संघर्ष और झगड़े-फसाद के चिह्न हैं। धारदार हथियारों का खुलकर प्रयोग हुआ है। लाखों की संपत्ति नष्ट कर दी गई है। शांति और विश्वास भंग हो गये हैं। जन-जीवन भयग्रस्त और ठप्प है। लोग घरों में बंद रहने को मजबूर हैं। तलाशियां और गिरफ्तारियां की जा रही हैं। अनिश्चय और आशंका का वातावरण बन गया है। मानवीय मूल्य बौने हो गये हैं। पुलिस ने नियंत्रण पाने के सभी उपाय किए हैं। हालात काबू आते न देखकर कई जगह गोली चलानी पड़ी है। दंगों में कई मारे गए हैं, बहुत से घायल हुए हैं। घायलों में कइयों की हालत गंभीर है। कानून और व्यवस्था की निरन्तर बिगड़ती स्थिति को देखते, रात को सेना बुला ली गई है। शहर में कर्फ्यू लग गया है। दंगों में इन्सानी खून सड़कों पर बहता है। हैवानियत तांडव करती है। नफरत और अफवाहों का बाजार गर्म हो जाता है।

चौराहों-तिराहों पर सुरक्षा बलों की वायरलैस की गाड़ियां दिखाई पड़ती हैं। इर्द-गिर्द बंदूकधारी हैं। कुछ मुस्तैद खड़े हैं। कुछ छोटे मुड्ढों और फोल्डिंग कुर्सियों को बिछाकर बैठे हैं। वातावरण में आतंक की सृष्टि होती है। चेहरों पर तनाव और परेशानी के भाव हैं।

सामने की गली में फेरी लगाकर सब्जी बेचने वाले का एक ठेला नजर आता है। ऐसे में यह कहां से आ गया है। ''सभी सोचने लगे हैं। एक अधेड़ औरत गली से निकल कर भाव-ताव करने लगती है। लग रहा है—बहुत महंगी करके बेच रहा है !···तभी पुलिस की एक गश्ती गाड़ी उधर आ निकलती है। महिला तो घर के फाटक के भीतर पहुंच गई है। लेकिन ठेले वाला कहां जाए। गाड़ी से कुछ

रास्ते में कई जन शवयात्रा से लौटते इस जत्थे को देखकर डर जाते हैं। वे भागकर गली के मुहाने या घर के अन्दर गायब हो जाते है। आकाशवाणी स्टेशन से ड्यूटी करके लौट रही एक महिला कर्मचारी अचानक इतने व्यक्तियों को साथ देखकर, सड़क से वापस पलटकर, पास की एक छोटी गली मे जा घसती है। तमाशबीन और उत्सुक बच्चे, जो अब मार्गों मे निकल रहे हैं, किसी पुलिस जीप को आते देखकर भाग खड़े होते हैं, कही दुबककर छिप जाते हैं। सबके दिलो मे भय और आशका व्याप्त है। सभी परस्पर डरे हुए है। हर दूसरा चेहरा दुश्मन नजर आ रहा है।

शव-दाह मे गए लोग लौटकर आ गए है। कर्फ्यू पुन. लग गया है। ☐

दरार

प्रेम भटनागर

वह व्यावहारिक थे और मैं भावनात्मक। हमारी आदत में कोई समानता भी नहीं थी और न वह मेरे कोई रिश्तेदार ही थे। हमारी आयु में इतना अंतर था कि उन्हें हमउम्र नहीं कहा जा सकता था। इसके बावजूद भी हमारे आपसी सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ थे जिसका कारण हमारा साहित्य प्रेम था।

उनका नाम पंडित काशीराम था। मैं उन्हें आदर से पंडित जी कहता और वे मुझे विनोद बाबू कहते थे।

पंडित काशीराम रेलवे में नौकर थे। उनकी पत्नी एक मृत शिशु को जन्म देकर पहले ही प्रसव में परलोक गमन कर गई। पंडित काशीराम यह आघात नहीं सह पाए। पत्नी की मृत्यु से वे बुरी तरह टूट गए। परिवार और अपनों के नाम पर हरीपुर में निःसंतान विधवा बहन थी। पंडित काशीराम नौकरी छोड़कर हमेशा के लिए अपनी बहन के पास आ गए। हरिपुर में ही एक प्राइवेट स्कूल में अध्यापन का काम शुरू किया और समय आने पर उसी स्कूल से सेवानिवृत्त हुए। अतः उनका अधिकांश समय पढ़ने-लिखने में ही बीतता। पुस्तकें खरीदने का उन्हें बहुत शौक था। इसीलिए उनका अच्छा खासा निजी पुस्तकालय था।

शाम को हम नियमित रूप से टहलने जाते। टहलते-टहलते हम दूर बहने वाली नदी तक जाते। वहां नदी के किसी शांत किनारे बैठकर हम राजनैतिक और साहित्यिक चर्चाएं करते। शाम होते ही वापस घर लौट पड़ते।

एक दिन की बात है। टहलकर हम वापस घर लौट रहे थे। मिनर्वा टाकीज के पास गुजर रहे थे, तभी पंडितजी की नजर फिल्म पोस्टर "सौतेला भाई" पर पड़ी। पूछा—शायद कोई पारिवारिक पिक्चर है।

"नहीं, पंडितजी यह तो एकदम साहित्यिक है।" मैंने कहा। "शरत बाबू के "बैकुण्ठ की विल" उपन्यास पर बनी है।"

"तब तो इसे देखना होगा।" वह बोले "विनोद बाबू ! आप तो जानते ही हैं कि शरत मेरे सबसे प्रिय लेखक हैं। कल रविवार है और आपको भी कोर्ट नहीं जाना है। कल फिल्म देख लेते हैं।"

"नही", मैंने कहा। "कल मुझे एक जरूरी केस की तैयारी करनी है। मैं समय नहीं दे पाऊगा।" मैंने अपनी मजबूरी बताई। "हा, आप जरूर देखें। अच्छी मूवी है और मेरी देखी हुई है।"

"अच्छी मूवी को दुबारा भी देखा जा सकता है। अब रही केस की तैयारी तो हमें कौन से पूरे दिन फिल्म देखना है। चद घटो की बात है। नहीं, विनोद बाबू, आपको चलना होगा।"

उनके आग्रह को टाला नही जा सकता था। हम समय पर 'मिनर्वा टाकीज' पहुचे। टिकिट खरीदने जब मैं आगे बढ़ा तो उन्होने मुझे रोक दिया और खुद ने टिकिट खरीदे।

पिक्चर समाप्ति पर हम घर की ओर मुड़े। उन्हें पिक्चर बहुत पसद आई। रास्ते भर वह फिल्म की बस तारीफ करते रहे। बात आई-गई हो गई।

महीना बीता। एक दिन की बात है। हमेशा की तरह टहल कर लौट रहे थे। रास्ते मे उन्होंने कहा—"विनोद बाबू, मेरे आप पर पाच रू० निकलते हैं।"

मैं उनका मुह ताकने लगा। लेन-देन के मामले मे बहुत साफ हूं। फिर पंडित जी मेरा लेन-देन कभी हुआ नहीं। कुछ समझ मे नही आया। बोला, "पंडित जी। मुझे तो याद नही आता है। फिर भी", "मैं जानता था कि आप भूल गए है।" उन्होंने बीच मे ही कहा। "आपको याद होगा कि हम फिल्म देखने गए थे और टिकिट के पैसे मैंने दिए थे। आपने अपने टिकिट के पैसे अभी तक नहीं लौटाए है।"

मैं उन्हें यत्रवत देखता ही रह गया। कानों पर जैसे विश्वास ही नही रहा था। इतनी ओछी बात मेरे लिए कल्पनातीत थी। "पंडित जी, मुझे नही मालूम था कि मुझे अपने टिकिट के पैसे लौटाने है। मैं तो टिकिट खरीद रहा था। पर आपने ही मुझे रोका। वैसे भी फिल्म मेरी देखी हुई थी और आपके आग्रह के कारण मुझे दुबारा देखनी पड़ी। खैर, अब आप दोनो टिकिटो के पैसे रखें" और मैंने दस का नोट बढ़ा दिया।

"नही, वह क्या करेंगी। विनोद बाबू, मुझे पूरे आराम की जरूरत है। आप भी दुबारा कष्ट न करें तो अच्छा है। जरूरत होने पर मैं खुद बुलवा लूगा।"

इस अपमान से मैं तिलमिला उठा। बुलवाने पर अब आना तो दूर, मर जाने के बाद दाह-संस्कार मे भी नही आने वाला। राई का पहाड़ तो सुना था पर यह तो बिना राई के ही पहाड़ खड़ा था। मामूली पैसो का इतना बड़ा तूल। मैंने अपना अंत.करण भी टटोला। पर अपना दोष कही भी नजर नही आया। अब किसी से भी सम्बन्ध न बढ़ाने की कसम खाई। अब आदमी की जाति पर भरोसा ही उठ गया।

और एक दिन सचमुच पडितजी का बुलावा आ गया। मैंने जाने से साफ मना कर दिया। अब मरे तो मेरी बला से, पर पत्नी थी कि फिर जाने के लिए मजबूर कर रही थी। उसका कहना था कि माना कि सारा दोष पडितजी का ही है, पर एक बार जाने मे क्या हर्ज है। यही नही, वह भी जाने के लिए तैयार हो गई।

मैंने पत्नी को रोका। अपना अपमान तो जैसे-तैसे मैं पी गया, पर पत्नी का अपमान मैं बर्दाश्त नही कर पाता। दिल पर जैसे पत्थर रख कर न चाहते हुए भी एक बार फिर पडितजी के घर पहुचा।

"आओ विनोद बाबू।" उनकी वाणी मे स्नेह और वात्सल्य था। मैं जानता था कि तुम जरूर आओगे। मुझे तुम से बहुत कुछ कहना है। शायद फिर कभी मौका ही न मिले। मेरे पास बैठो।"

मैं चुपचाप उनके पास बैठ गया।

वे कहने लगे, "मुझ से बहुत नाराज हो। होना भी चाहिए। मैंने क्या तुम्हारा कम दिल दुखाया है। पर ईश्वर जानता है कि ऐसा करके मैंने तुमसे कहीं ज्यादा मानसिक पीड़ा भोगी है। हरपल घुटता रहा पर मुह से ऊफ भी कैसे करता। पर इसके अलावा दूसरा चारा भी नही था।"

मैं खामोश था। चुपचाप सुनता रहा।

वह फिर शुरू हो गए, "ईश्वर साक्षी है। तुम मुझे पुत्र की तरह प्यारे हो। तुम्हारे अनिष्ट और अमगल की कल्पना से ही मैं सिहर उठता हूं। फिर यह जानते हुए कि मुझे टी० बी० जैसा सक्रामक रोग है, मैं तुम्हे कैसे पास आने देता? हां विनोद बाबू, मुझे टी० बी० है और आखिरी स्टेज है। मैं चद दिनों का महमान हूं। मेरा अंतिम समय आ गया है। अब न जाने कब जबान बंद हो जाती और दिल की बात इस दिल मे रह जाती। इसीलिए आज बुलवाया।" उनकी आंखें गीली हो गईं।

घृणा करो और मुझसे बहुत दूर रहो। इसीलिए टिकिट के पैसों की बात खड़ी करनी पड़ी।

हां, मैंने पेट काट-काट कर किताबें खरीदी है। मैं अपनी स्मृति में सभी किताबें तुम्हें दिए जाता हूं।" उनकी आंखों से आसू टपकने लगे। "हो सके तो मुझे माफ कर देना। हां, अब यहा मत आना।"

मैं आसमान से जमीन पर आ गया। पंडितजी का आकार सहसा बढ़ता गया और मेरा आकार धीरे-धीरे सिमटता ही जा रहा था। मुझे लगा मैं अपने को कभी भी माफ नहीं कर पाऊंगा। मैं पंडितजी से बुरी तरह चिपट गया। मेरे मुह से अनायास निकला, "पंडित जी आप —" मेरा गला रुंध गया और मुझसे आगे कुछ भी तो नहीं बोला गया। मेरी आंखो से अश्रुधारा बहने लगी। हृदय की सभी कड़वाहट और नफरत आसुओ मे घुल कर बाहर आना चाहती थी।

मुझे लगा कि हमारे सम्बन्धो के बीच पड़ी वह कभी न पटनेवाली गहरी दरार अब एक ही बार मे पट गई थी। □

गया था। [illegible] मुझे छोड़ आये थे, पर अब हम अकेले ही [illegible]
अत गर्म और किसी को नाहक परेशान न करने की गर्ज से इंकार कर दिया था।
अभी भी कोई खास देर नहीं हुई थी, दो घंटे बाकी थे अभी। लेकिन ध्यान ये आ रहा था कि यदि इसी तरह समय निकलता गया तो दो क्या बीस घंटे भी कम पड़ सकते हैं। लिहाजा मैं बस स्टॉप के पास खड़े एक ऑटो-रिक्शा वाले के पास गया। गई जगह मोल-भाव कर लेने का सूत्र दिमाग में था अत: पूछा, तो बड़ी ईमानदारी पूर्वक जवाब मिला। "साहब, मीटर के हिसाब से जो बनेगा उसे ले लेंगे।" लेकिन आज साक्षात्कार देने जाने की इस घड़ी में हम कुछ ज्यादा ही समझदार हो चले थे मैं जानता था कि इस तरह वो मुझे पूरे शहर में घुमाता फिरेगा और बसों के नम्बरों के से छुटकारा पाने के बाद मेरी नजरें ऑटो रिक्शा के मीटर के साथ दौड़ती रहेंगी और बिना वजह तनाव उत्पन्न होगा। इसलिए मैंने अपनी शंका उसके सामने प्रकट कर दी तो वो मुस्कराते हुए बोला—"साहब, फिर आप रास्ता बता देना उधर से ही ले चलेंगे आपको यहाँ उसने मेरी नब्ज आखिर पकड़ ही ली। मैं तो पूरी तरह से अजनबी था इस शहर में, उसे क्या खाक पता बताता। इसी उधेड़ बुन में मैं जब सामने की ओर देखते हुए कुछ सोच रहा था कि अचानक सामने से आती एक बस पर लिखे 402 नम्बर पढ़कर मैं बस स्टॉप की तरफ दौड़ पड़ा। इसी बीच बस भी आ गयी थी और मैं दौड़ती हुई अवस्था में ही सीधे बस के गेट पर पहुंच गया था। मुझे अंदर पहुंचाने का काम मेरे पीछे आई हुई भीड़ ने कर दिया था।

भीड़ में से ही एक सज्जन से मालूम हुआ कि लगभग पौना घंटा तो लग ही जाएगा मुझे अपने लक्ष्य तक पहुंचने में। भीड़ के रेले में मैं स्वतः ही आगे और और आगे बढ़ा जा रहा था।

मुझे लगा यदि इसी तरह मैंने अपने आपको भीड़ के रहमो-करम पर छोड़ दिया तो जिस तरह इसने मुझे अंदर पहुंचाया था, उसी तरह वह बिना मंजिल के आए बाहर भी धकेल देगी और सफर भी काफी लम्बा था मेरे लिए। बड़े शहरों में तो यह आम बात है, पर मेरे लिए खासा ही थो इतनी देर खड़े रहना।

एक सीट के खाली होते ही ज्योंही मैं बैठने लगा तो इससे पहले कि मैं कोई प्रयत्न कर पाता, एक महाशय फुर्ती से विराजमान हो चुके थे और दंड-बैठक की मुद्रा में मुझे वापस खड़े हो जाना पड़ा। लेकिन दूसरी बार उसी फुर्ती का संचार मुझमें हो चुका था। एक महिला ज्योंही उठी तो मैं हो गया आरूढ़। जैसे कोई राज-सिंहासन प्राप्त हो गया हो, लेकिन तभी कोई झांसी की रानी आ टपकी और मेरी तरफ उंगली से उठने का इशारा करने लगी। मैं कुछ समझ पाता उससे पहले ही वह बोली—"इट इज ऑनली फॉर लेडिज।" मैंने घूमकर सीट की पीठ पर

देखा और "ओह आई एम वेरी सॉरी" कहते हुए सिंहासन से उठकर खड़ा हो गया। अब की बार तो सच में खिसिया गया था मैं। बस का माहौल इस सब में कोई रुचि नहीं ले रहा था। शायद आम बात थी। लोगों के लिए आते ही रहते होंगे न ऐसे-ऐसे नमूने।

अब सोच लिया था मैंने कि बैठूंगा नहीं, बिल्कुल नहीं। क्या मुसीबत है यार, एक तो सीट मिलती ही नहीं, मिलती भी है तो छोड़नी पड़ती है। लेकिन कभी इससे पहले किसी ने पकड़कर जोर से खींच लिया था और इससे पहले कि मैं कुछ समझ पाता मैंने अपने को एक सीट पर बैठे पाया। पास में ही एक प्रौढ़ महिला बैठी हुई थी और इस सीट पर मैं उनकी ही मेहरबानी से विद्यमान था। मेरे बैठते ही बोलीं—

"बहुत देर से देख रही थी तुम्हें परेशान होते इसलिए बैठा लिया।"

मैंने उनका शुक्रिया अदा किया और बोला—"मगर ये सीट तो महिलाओं के लिए है।"

तो वे बोलीं—"नहीं तो।"

"तो फिर आप।" मैंने सकुचाते से पूछा।

"ओह, हम कहीं भी बैठ सकते हैं।" और यह कहकर ठठा कर हंस दीं। उनकी इस उन्मुक्त हंसी से इतनी देर का तनाव कुछ कम हो गया था।

"पहली बार आए हो इस शहर में ?"

"हां, एक साक्षात्कार के सिलसिले में। क्या, आप बता सकती हैं यह अशोक विहार कौनसा स्टाप होगा ?"

"अरे वाह। वहीं तो मैं भी उतरूंगी। इस स्टॉप के बाद वाला ही है। किस पद के लिए हो रहा है साक्षात्कार।"

"तकनीकी सहायक के लिए।"

"अब शायद हमें आगे दरवाजे तक पहुंचने का प्रयत्न करना चाहिए।" कहकर वह उठ खड़ी हुई थीं। मैं साथ-साथ उठकर उनके पीछे खिसकता हुआ आगे बढ़ रहा था। दरवाजे तक पहुंचते-पहुंचते बस स्टाप आ गया। उतरते ही बड़ी राहत सी मिली थी इस जिन्दगी से, जो यहां के लोगों की दिनचर्या का अभिन्न अंग बन चुकी थी।

"उफ् ! कैसे जीते हैं लोग यहां ?" अचानक ही मुंह से निकल पड़ा था।

"मर भी तो नहीं सकते", जवाब सुनकर मुंह ताकने लगा था मैं। चेहरे पर गंभीर मायूसी महानगरों की त्रासदी का बयान कर रही थी। अगले ही पल ही बोल उठीं—

"मदर इंडिया देखी है ? दुनिया में हम आए हैं तो जीना ही पड़ेगा और जीवन है अगर जहर तो पीना ही पड़ेगा।" और फिर ठठाकर हंस पड़ीं।

मुझे महसूस हुआ सचमुच जीना तो एक कला है। कुछ लोग परेशानी के माहौल में भी बेहतर ढंग से जी लेते हैं तो कुछ समस्त सुविधाओं के होते हुए भी जिंदगी की रूमानियत से महरूम रह जाते हैं।

"ओ० के० जैंटलमेन। बेस्ट ऑफ लक।"

"ओह थैंक्यू। थैंक्यू वेरी मच। सच आपके चंद घड़ी के साथ ने इस अजनबी शहर में कुछ पल को ही सही, अपनेपन का जो अहसास कराया उसे कभी भूल नहीं पाऊंगा।"

"अच्छा बॉय। जिंदगी के किसी मोड़ पर मुलाकात हुई तो फिर मिलेंगे। क्योंकि दुनिया गोल है न।" और फिर ठहाकर हंसती हुई वह मेरे सामने वाले रास्ते की ओर चल दी। मैं उसे तब तक देखता रहा जब तक कि वह आंखों से ओझल न हो गयी। तंद्रा भंग हुई तो सिर्फ आधा घंटा रह गया था साक्षात्कार में। एक राहगीर से पता पूछा। तेज कदम बढ़ाते हुए उस तरफ चल पड़ा। लगभग दस मिनट में ही जा पहुंचा था मैं। आखिर मंजिले-मकसूद आ ही पहुंची। दस बज चुके थे, लेकिन—कार्यालय अभी भी उबासी लेता-सा प्रतीत हो रहा था। जिस तरह जिद्दी बच्चे को थप्पड़ लगाकर जगाया जाता है, मेहतर भी झाड़ू कूटने के से अंदाज में सफाई करने में व्यस्त था और उसी उड़ती धूल से बचने के लिए चंद समय के पाबंद कर्मचारी बाहर स्थित पान की दुकान पर सुट्टा लगाकर या पान चबाते हुए समय गुजार रहे थे। दो-चार अदद बेरोजगार भी इस बीच और पहुंच गए थे। पान की दुकान पर खड़े कर्मचारीगण हमारे हाथों में ब्रीफकेस, बेग, फाइलें वगैरह देखते हुए आपस में इशारे करते खिल्ली-सी उड़ाते प्रतीत हो रहे थे।

झाड़ू की कुटाई से कार्यालय की नींद नहीं खुली थी शायद। इसलिए अब मेहतर उसे रगड़-रगड़कर नहला रहा था। थोड़ी देर में चमाचम चमकती कान्वेंट स्कूल की ड्रेस की भांति कार्यालय दमक उठा तो कर्मचारियों ने बड़ी शोखी के साथ प्रवेश किया। हमें भी चपरासी ने स्वागत कक्ष में बिठा दिया।

साढ़े दस बज चुके थे। साहब अभी तक नहीं आए थे। बहरहाल कार्यालय में कर्मचारियों की संख्या बढ़ती ही जा रही थी। इस बीच साक्षात्कार देने वाले कई और अभ्यर्थी भी आ गए थे, जिनमें से एक सज्जन वही थे जिनके भरोसे पर मैंने अपने आपको बस स्टॉप पर छोड़ दिया था। नजरें मिलीं तो वे मेरी तरफ खिंच आए, "अरे! आप भी यहीं आने वाले थे। बताया नहीं आपने। वो बस तो मिस हो गयी थी, आपको कोई परेशानी तो नहीं हुई।"

"नहीं। कोई खास नहीं। दरअसल मैं सतर्क बिल्कुल नहीं था, इससे पहले कि बस के पास पहुंच पाता। बस चल दी थी।"

"माफ कीजिएगा। मैं आपकी मदद नहीं कर सका।"

"अरे नहीं, नहीं ऐसी कोई बात नहीं है।"

साहब आ गए, साहब आ गए की आवाज के साथ ही अचानक वातावरण में गर्माहट आ गई। बैठे हुए सभी अभ्यर्थी अटेंशन खड़े हो गए। तभी एक गजी-सी चाद वाले भारी से आदमी ने मुंह में पाइप दबाए हुए स्वागत कक्ष के कांच के गेट को धकेलकर अंदर प्रवेश किया और एक उड़ती-सी नजर अपरिचित चेहरों पर डालते हुए चलने लगे कि एक सुंदर कन्या पर नजर पड़ते ही बांछें खिल गयीं।

"नमस्ते अंकल।" एक शोख मुस्कान उसके चेहरे पर खिल उठी।

'हैलो चार्मिंग। हाउ आर यू।" कहते हुए साहब ने उसके गाल पर चिकोटी काट ली। (हंसते हुए) "फाइन अंकल, मुझे कॉलेज जाना है प्लीज मेरा इंटरव्यू पहले कर लीजिएगा।"

"ओह नॉटी गर्ल। तुम हर चीज में बहुत जल्दी करती हो। कहते हुए साहब अपने केबिन में प्रवेश कर गए।

सभी लोग इस नाटक को मुंह बाए देखे जा रहे थे। जहां प्रत्याशी एवं साक्षात्कारकर्ता के मध्य इतने प्रगाढ़ सम्बन्ध हों वहां प्रत्याशी की सफलता में संदेह की गुंजाइश ही न थी। सभी की नजरों में यही भाव नजर आ रहा था।

इतने में ही ऑफिस का एक सहायक सभी से उपस्थिति पत्र पर हस्ताक्षर कराने लगा। जब सभी के हस्ताक्षर हो चुके तो मेरे साथ ही खड़े हुए उस दाढ़ी वाले प्रत्याशी ने उन महाशय से पूछा कि इस पद के लिए कितने उम्मीदवारों का चयन किया जाना है।

पहले तो उन महाशय ने उसे ऐसे घूरा जैसे अजायबघर से कोई जानवर उठकर यहां आ गया हो। फिर व्यंग्य से मुस्कराता हुआ बोला—"एक, केवल मात्र एक।"

इतना सुनते ही सभी लोग सकते में आ गए और हमें अपनी उपस्थिति की निरर्थकता का अहसास होने लगा। क्योंकि मात्र इस एक पद के लिए किसका चयन किया जाना है, सभी को पता चल चुका था। इस बीच वह दाढ़ी वाला प्रत्याशी कुछ ज्यादा ही असामान्य हो गया था। बार-बार दाढ़ी खुजलाने और मुट्ठियां भींचने में उसका आक्रोश प्रत्यक्षतः दृष्टिगत हो चुका था।

अचानक ही साक्षात्कार के लिए पहले प्रत्याशी का नाम पुकारा गया—

"मिस ज्योत्स्ना माथुर!"

सभी की निगाहें लड़कियों में ज्योत्स्ना नाम की लड़की को तलाशने लगीं और वही साक्षात्कारकर्ता अंकल की भतीजी अपने खुले हुए बालों को झटकाकर एक उपेक्षित नजर सभी प्रत्याशियों पर डालती हुई ज्योंही केबिन में प्रवेश करने को हुई कि अचानक वो दाढ़ी वाला प्रत्याशी उसे धकेलता हुआ केबिन में प्रवेश कर गया। चपरासी, जिसने रोकने की कोशिश की थी, जमीन पर पड़ा धूल चाट रहा था। सभी हतप्रभ रह गए। किसी अज्ञात आशंका से सभी के दिल धड़कने लगे। केबिन के बाहर खुले दरवाजे पर भीड़ इकट्ठी हो गयी।

नवजात या नन्हें शिशुओं को गाड़ने आए हैं। पर आज देखा कि उस भूमि पर काफी अतिक्रमण हो चुका है और जो बची है वह दलदली है जहां गड्ढा नहीं खोदा जा सकता। आखिर थक-हारकर विवशतावश कब्रिस्तान के बिलकुल किनारे अतिक्रमण की हुई भूमि पर गड्ढा खोद शव गाड़ दिया।

ईदगाह में साम्प्रदायिक सद्भाव का आयोजन है। शहर के हिन्दू, मुसलमान सिख, ईसाई आदि सभी धर्मों के मौलवी, पुजारी, पादरी आने वाले हैं। शहर काजी की अध्यक्षता और विश्व हिन्दू परिषद के कर्मठ कार्यकर्ता नागर साहब के मुख्य आतिथ्य में भव्य आयोजन है। जहां सामयिक कविता पाठ के लिए मैं भी आमन्त्रित हूं। अतः चल पड़ा सद्भाव सम्मेलन में भाग लेने के लिए।

मुश्किल से आधा किलोमीटर रास्ता तय किया होगा कि आवाजें कानों में पड़ी—"यही है वो कलाल का बच्चा, यही है वो हरामखोर हरिमोहन, इसी के हाथों मे मुर्दा था। इसी ने कब्रिस्तान में बच्चे को दफन किया है, यही काफिर है। जान-बूझकर हिन्दू के बच्चे को दफनाकर इस्लाम की तौहीन की है।

मैं हतप्रभ रह गया। देखा, दो-चार हमलावर हाथों में लाठियां लिये मेरी ओर लपक रहे थे। अनाप-शनाप बक रहे थे। मैं लाचार, बेबस, निस्सहाय जहां का तहां खड़ा किसी अनिष्ट की आशंका से कांप गया। लगा, पैर तले की जमीन है ही नहीं। तभी मैंने देखा दूसरी ओर से शहर काजी अपने कुछ साथियों के साथ मेरे नजदीक आ गए हैं। काजी साहब कुछ कहते, इसके पहले जल्दी-जल्दी मैंने सारी बात उगल दी। परिस्थिति की गम्भीरता को देख काजीजी ने मुझे ओट में ले लिया। इधर हमलावर भी गुस्से मे लाल-पीले होते पास आ गए। उनमे से एक चीखा - काजी साहब आप बीच मे मत पड़ो! छोड़ दो इस रसाले को। यह इस्लाम का गुनहगार है। इसने कब्रिस्तान की जमीन मे हिन्दू का मुर्दा गाड़ा है। घोंप दो छूरा हरामजादे के पेट मे।

"ठहरो! आहिस्ता हो जाओ। मैं सब समझता हूं। सब समझाता हूं मैं। पर जरा आहिस्ते हो जाओ। अल्लाह के वास्ते मेरी बात सुनो।" काजी साहब बोले।

तभी आग उगलता सा दूसरा हमलावर चिल्लाया—"काजी जी, आप हिन्दुओं से मिले हुए हो। तरफदारी कर रहे हो इस हिन्दू के बच्चे की, जो इस्लाम का पक्का दुश्मन है।"

"तरफदारी तो मैं किसी की भी नहीं करता। हां, इन्सानी बात मैं जरूर करता हूं। सुनो! जर और जमीन न किसी के रहे हैं न रहेंगे। रही धर्म की बात तो हमारा धर्म अल्लाहताला की इबादत है। आदमियत की पूजा है। खून-खराबा तो इसके ऊपर बैठे जानवर की फितरत है। और'' जिस मुर्दे की बात कर रहे

हो ? उस चार दिन के बच्चे की, जो आंख खोलने से पहले ही मिट्टी हो गया। मिट्टी का मिट्टी में मिलना इस्लाम की तौहीन ?"

"बकवास है सब। बहुत हो गया। रास्ते से हट जाओ वरना···"

"वरना, वरना की ही बात है तो हट गया रास्ते से। यह हिन्दू है, कत्ल कर दो इसका। यह हरिमोहन है मार डालो इसको। इसने कब्रिस्तान की मिट्टी में हिन्दू को दफनाया है, हलाल कर दो इसको। पर·· ठहरो। मैंने इसकी तरफदारी की है। पहले मेरा कत्ल करो। लाचार इंसान के जीवन की रक्षा मेरा गुनाह है। इस्लाम की तौहीन है, तो काट दो गला मेरा। पहले मेरी लाश पर से गुजरना होगा। तब···?" कहते हुए काजी साहब आगे बढ़ गए।

दूर कहीं से आहिस्ता-आहिस्ता गीत के मीठे बोल वातावरण में गूंज रहे थे—

"अल्लाह ईश्वर तेरा नाम सबको सन्मति दे भगवान···" शायद ईदगाह के उस स्थल से जहां साम्प्रदायिक सद्भाव सम्मेलन की तैयारियां चल रही थीं···।

☐

साहब का चेहरा फक पड़ चुका था। उनके साथ में बैठे उसी ऑफिस के उनके चमचों के सिर पर भी पसीने की बूंदें चुहचुहा आई थीं। फिर भी साहब अपने आपको संभालते हुए बोले—"आर यू मिस ज्योत्स्ना माथुर।"

दाढ़ी वाले ने पलटकर पूछा—"क्या मैं पूछ सकता हूं कि आपको कितने उम्मीदवारों का चयन करना है।"

"आर यू मिस ज्योत्स्ना माथुर।" साहब तेजी से गुस्से में चिल्लाए।

"क्या मैं पूछ सकता हूं कि जब उम्मीदवार का चयन पहले से ही तय था तो इतने लोगों को परेशान करने की क्या आवश्यकता थी।"

"आय एम आस्किंग यू। आर यू मिस ज्योत्स्ना माथुर।"

"और मैं आपसे पूछ रहा हूं कि आपको हमें हमारी औकात का अहसास दिलाने का अधिकार किसने दिया?"

"ओह यू शटअप बास्टर्ड। उठाकर बाहर फेंक दो इस सूअर के बच्चे को।"

इससे पहले कि कुछ कर्मचारी उसकी तरफ बढ़ते दाढ़ी वाले ने लपककर साहब का गिरेबान पकड़कर मेज पर खींच लिया और चिल्लाकर बोला—'तमीज से बात कर कुत्ते।"

लेकिन इससे पहले कि उसका दबाव गिरेबान पर बढ़ता, उसे साहब से अलग कर कुछ चमचे उस पर लात-घूंसे बरसाने लगे। लेकिन इतने प्रत्याशियों में से कोई भी कुछ न बोला। *बस यहीं से शोषण की शुरुआत होती है। यहीं से तो* फलता-फूलता है शोषण का दानव। 'अत्याचार करने वाले से ज्यादा दोषी अत्याचार सहने वाला होता है' कहावत के अब कोई मायने नहीं रह गए। अत्याचार सहना नियति बन चुका है। दाढ़ी वाले के मुंह से खून निकलने लगा था और ऐसी स्थिति में उसे उठाकर बाहर सड़क पर फेंक दिया गया।

साहब ने अटेंडेंस शीट पर हस्ताक्षर लेने वाले क्लर्क के कान में कुछ कहा और इस पूरे कांड की केन्द्र उस लड़की को, जो थर-थर कांप रही थी, कंधे पर हाथ रखकर दिलासा देते हुए अपने केबिन में ले गए। अटेंडेंस शीट पर दस्तखत लेने वाले क्लर्क ने सबों को सम्बोधित करते हुए कहा—

"जैसा कि आप देख ही रहे हैं। इस तनावपूर्ण माहौल में साक्षात्कार का हो पाना सम्भव नहीं है अतः यह साक्षात्कार यहीं स्थगित किया जाता है। निकट भविष्य में इसके लिए नया दिनांक आप लोगों को यथा समय सूचित कर दिया जायेगा।"

बात खत्म करके वह अपने कागजातों को संभालता हुआ अपनी सीट की तरफ बढ़ गया। किंकर्तव्यविमूढ़ निरीह बेरोजगार खड़े अभी भी केबिन को रेगिस्तान में बादलों की मानिंद ताक रहे थे। लेकिन धीरे-धीरे यथार्थ में लौटते हुए खिसकने लगे थे। सबको मालूम था, अब कभी यहां साक्षात्कार के लिए नहीं बुलाया जाएगा। क्योंकि औपचारिकता कानूनन पूरी हो चुकी थी। सभी के हस्ताक्षर थे उपस्थिति पत्रक में, जो उनकी साक्षात्कार में उपस्थिति का स्पष्ट परिचायक था अब इससे क्या फर्क पड़ता है कि साक्षात्कार हुआ या नहीं और हो भी जाता तो . . . और मारे गये बेचारे। □

माटी का धरम

मणि बावर

पिछली रात से मूसलाधार वर्षा हो रही है। रुकने का नाम ही नहीं लेती
रुकने का बेसब्री से इन्तजार है।

वैसे बरसात के मौसम मे वर्षा की फुहार का दिन बड़ा मोहक लगता है। व
प्रबल इच्छा होती है कि किसी पिकनिक स्पॉट पर जाया जाय। रमणीय औ
प्रफुल्ल प्रकृति के आंचल का आनन्द लिया जाय।

पर आज की बात और है। आज बेहद उबाऊ लग रही है वर्षा। गमगी
और उदास चेहरे ढाल पटाल और इधर-उधर उकड़ूं बने बैठे है। बीच-बीच
नारी कण्ठों से निकलती सिसकियां वातावरण को और अधिक बोझिल बना र
हैं। पड़ोस के नाना-नाना की बेटी सविता के चार दिन की उम्र वाले शिशु
मौत हो गई है। लड़का था। पहला लड़का। गौर वर्ण का। बहुत खूबसूरत
लड़का होने पर भला किसे प्रसन्नता नहीं होती है? और वह भी पहला! खुशि
बासों उछल पड़ी थी उस दिन। बैण्ड बजा था। मिठाइयां बांटी गई थी। दाई
झोली रुपये पैसे और अन्न उपहार से भर गई थी। पर'''देखते-ही-देखते तमा
खुशियां हवा हो गई।

वर्षा की झड़ी थोड़ी रुकी। फिर भी बूंदाबांदी तो हो ही रही थी। तय कि
गया कि अब चलना चाहिए। मैंने आगे बढ़कर धरती पर पड़े कुसुम, गुलाब-गु
और धवल वस्त्र में लिपटे नन्हें शिशु के शव को हाथों में उठाया और शव यात्रि
के साथ चल पड़ा उस ओर जहां अबोध शिशुओं को गाड़ा या दफनाया जाता है
सच कहता हूं आंखें भर आई थी उस वक्त, जन्म मृत्यु का यह अजीब वि
कारुणिक खेल देखकर। मृत्यु'''जन्म की अन्तिम परिणति। मृत्यु'''! सिहरन
सी उठ आई थी रोम-रोम में। हे ईश्वर! एक लम्बी उसांस मन-ही-मन भ
गई।

बस्तिरनान से कुछ आगे वह भूमि है जहां परम्परागत हिन्दू सम्प्रदाय के लो

मसान था जहां हिन्दुओं को गाड़ते आए हैं। पर आज देखा कि उस भूमि पर काफी अतिक्रमण हो चुका है और जो बची है वह इतनी है जहां गड्ढा नहीं खोदा जा सकता। आखिर थक-हारकर विवशतावश कब्रिस्तान के बिल्कुल किनारे अतिक्रमण की हुई भूमि पर गड्ढा खोद शव गाड़ दिया।

ईदगाह में साम्प्रदायिक सद्भाव का आयोजन है। शहर के हिन्दू, मुसलमान सिख, ईसाई आदि सभी धर्मों के मौलवी, पुजारी, पादरी आये हैं। शहर-काजी की अध्यक्षता और विश्व हिन्दू परिषद के कर्मठ कार्यकर्ता नागर साहब के सुन्दर आतिथ्य में भव्य आयोजन है। वहां सामयिक कविता पाठ के लिए मैं भी आमन्त्रित हूं। अतः चल पड़ा सद्भाव सम्मेलन में भाग लेने के लिए।

मुश्किल से आधा किलोमीटर रास्ता तय किया होगा कि आवाजें कानों में पड़ीं—"यही है वो कमाल का बच्चा, यही है वो हरामखोर हरिमोहन, इसी के हाथों में मुर्दा था। इसी ने कब्रिस्तान में बच्चे को दफन किया है, यही काफिर है। जान-बूझकर हिन्दू के बच्चे को दफनाकर इस्लाम की तौहीन की है।

मैं हतप्रभ रह गया। देखा, दो-चार हमलावर हाथों में लाठियां लिये मेरी ओर लपक रहे थे। अनाप-शनाप बक रहे थे। मैं लाचार, बेबस, निःसहाय जहां का तहां खड़ा किसी अनिष्ट की आशंका से कांप गया। लगा, पैर तले की जमीन है ही नहीं। तभी मैंने देखा दूसरी ओर से शहर काजी अपने कुछ साथियों के साथ मेरे नजदीक आ गए हैं। काजी साहब कुछ कहते, इसके पहले जल्दी-जल्दी मैंने सारी बात उगल दी। परिस्थिति की गम्भीरता को देख काजीजी ने मुझे ओट में ले लिया। इधर हमलावर भी गुस्से में लाल-पीले होते पास आ गए। उनमें से एक चीखा काजी साहब आप बीच में मत पड़ो! छोड़ दो इस स्साले को। यह इस्लाम का गुनहगार है। इसने कब्रिस्तान की जमीन में हिन्दू का मुर्दा गाड़ा है। घोंप दो छुरा हरामजादे के पेट में।

"ठहरो! आहिस्ता हो जाओ। मैं सब समझता हूं। सब समझता हूं मैं। पर जरा आहिस्ते हो जाओ। अल्लाह के वास्ते मेरी बात सुनो।" काजी साहब बोले।

तभी आग उगलता सा दूसरा हमलावर चिल्लाया—"काजीजी, आप हिन्दुओं से मिले हुए हो। तरफदारी कर रहे हो इस हिन्दू के बच्चे की, जो इस्लाम का पक्का दुश्मन है।"

"तरफदारी तो मैं किसी की भी नहीं करता। हां, इन्सानी बात मैं जरूर करता हूं। सुनो! जर और जमीन न किसी के रहे हैं न रहेंगे। रही धर्म की बात तो सच्चा धर्म अल्लाहताला की इबादत है। आदमियत की पूजा है। खून-खराबा तो अपने भीतर बैठे जानवर की फितरत है। और'' जिस मुर्दे की बात कर रहे

हो ? उस चार दिन के बच्चे की, जो आंख खोलने से पहले ही मिट्टी हो गया। मिट्टी का मिट्टी में मिलना इस्लाम की तौहीन ?"

"बकवास है सब। बहुत हो गया। रास्ते से हट जाओ वरना···"

"वरना, वरना की ही बात है तो हट गया रास्ते से। यह हिन्दू है, कत्ल कर दो इसका। यह हरिमोहन है मार डालो इसको। इसने कब्रिस्तान की मिट्टी में हिन्दू को दफनाया है, हलाल कर दो इसको। पर···ठहरो। मैंने इसकी तरफदारी की है। पहले मेरा कत्ल करो। लाचार इसान के जीवन की रक्षा मेरा गुनाह है। इस्लाम की तौहीन है, तो काट दो गला मेरा। पहले मेरी लाश पर से गुजरना होगा। तब···?" कहते हुए काजी साहब आगे बढ़ गए।

दूर कहीं से आहिस्ता-आहिस्ता गीत के मीठे बोल वातावरण में गूंज रहे थे—

"अल्लाह ईश्वर तेरा नाम सबको सन्मति दे भगवान···" शायद ईदगाह के उस स्थल से जहां साम्प्रदायिक सदभाव सम्मेलन की तैयारियां चल रही थीं···।

संपर्क-सूत्र

1. माधव नागदा, रा० मी० उ० मा० वि०, राजसमन्द
2. रामकुमार तिवाड़ी, व्याख्याता, आथी पट्टी, लाडनूं (नागौर)
3. दशरथ कुमार शर्मा, प्रधा०, रा० मा० वि०, पनेवर (टोंक)
4. त्रिलोकीमोहन पुरोहित, रा० मी० उ० मा० वि०, रेलमगरा (राजसमन्द)
5. भोगीलाल पाटीदार, व्याख्याता, रा० उ० मा० वि०, सीमलवाड़ा (डूंगरपुर)
6. इन्दा पारीक, व्याख्याता, भौतिक विज्ञान, जगमण का कुआं, बीकानेर
7. शिवनारायण शर्मा, प्रधा०, रा० मा० वि०, कावरा वाया दरीबा माइन्स, (राजसमन्द)
8. भरतसिंह ओला, रा० प्रा० वि० परलीका, नोहर (गंगानगर)
9. सुरेन्द्र मेहता, लक्ष्मी विलास, सरदारपुरा, 8वीं रोड, जोधपुर
10. हनुमान दीक्षित, प्रधा०, रा० उ० प्रा०, वि०, नम्बर एक, नोहर (गंगानगर)
11. गौरीशंकर 'आर्य' कवि कुटीर, चौमहल्ला (झालावाड़)
12. राधेश्याम अटल, 81 बालमंदिर कालोनी, मान टाऊन, सवाई माधोपुर
13. सत्य शकुन, हनुमान हत्था, बीकानेर
14. नृसिंह राजपुरोहित, पुरोहित कुटीर, धांधण (बाड़मेर)
15. अरनी रॉबर्ट्स, पोस्ट ऑफिस रोड, भीमगंज मंडी, कोटा-2
16. उषा किरण जैन, प्रधानाध्यापिका, अतिशय क्षेत्र बड़ा पदमपुरा (जयपुर)
17. बैजनाथ शर्मा, लोकमान्य तिलक शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, डबोक (उदयपुर)
18. शीतांशु भारद्वाज, 138 विद्या विहार, पिलानी-333031
19. भगवतीलाल शर्मा, प्रधा०, रा० प्रा० वि०, कश्मोर (चित्तौड़गढ़)
20. ओमदत्त जोशी, व० अ० रा० स० उ० मा० वि० ब्यावर (अजमेर)
21. पुष्पलता कश्यप, पुष्पांजली भवन, पुराने जे० सी० ओ० मैस (ग्रीफ) के पीछे, लक्ष्मीनगर, जोधपुर
22. प्रेम भटनागर, फतहपुरा, उदयपुर
23. विनोद शर्मा, राजस्थान विद्यापीठ, जनजाति कृषि विश्वविद्यालय, झाडोल (फलासिया), उदयपुर
24. मणि बावरा, रा० उ० मा० वि०, बांसवाड़ा